MAHY-101

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

एम.ए. पाठ्यक्रम
इतिहास

खण्ड - 1

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 1	
यूरोप में सामंतवाद का क्रमिक विकास	3-12
इकाई 2	
यूरोप में मध्यकालीन राजनीतिक विचारधारा और राजनैतिक संगठन	13-33
इकाई 3	
सामन्तवाद की श्रेणियां एवं स्वरूप	34-42
इकाई 4	
टर्की की राजनीति, अर्थव्यवस्था और समान	43-55
इकाई 5	
मध्यकालीन यूरोपीय समाज का पतन	56-67

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी. एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार,
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता,
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता,
इतिहास विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

डा. कमलेश शर्मा,
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. बी.आर. ग्रोवर,
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

प्रो. जे.पी. मिश्रा,
इतिहास विभाग, काशी हिन्दु
विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ.प्र.)

डा. बृजकिशोर शर्मा,
विभागाध्यक्ष , इतिहास विभाग, कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. याकूब अली खान,
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. रत्नेश्वर मिश्र,
इतिहास विभाग, एल.एन.एम.
विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

डा. एस.के. मनोत
इतिहास विभाग, राजकीय डूंगर
महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)

डा. याकूब अली खान,
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. मकसूद अहमदखान,
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. बृजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

डा. आर.वी. व्यास, कुलपति
डा. श्रीमती कमलेश शर्मा, विभागाध्यक्ष
डा. पी.के. शर्मा, निदेशक, पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण

पाठ्य सामग्री उत्पादन विभाग

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी

सर्वाधिकार सुरक्षित
इस सामग्री के किसी भी अंश की कोटा विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में "मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित-२०२४

मुद्रक: सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

इकाई-1
यूरोप में सामन्तवाद का क्रमिक विकास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 यूरोपीय सामन्तवाद की परिभाषा

1.3 सामन्तवाद की उत्पत्ति और उसका क्रमिक विकास

1.3.1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष

1.3.2 जागीरदारी की उत्पत्ति

1.3.3 माफी भूमि की उत्पत्ति

1.4 यूरोप में सामन्तवादी प्रथा का विस्तार

1.5 सामन्ती जोत के सिद्धान्त

1.5.1 नियमित अधीनता और स्वामी-भक्ति

1.5.2 उत्तराधिकार

1.5.3 ज्येष्ठाधिकार

1.5.4 महिला उत्तराधिकार और प्रतिपाल्यता

1.5.5 उप-सामन्तवाद

1.5.6 राहत और सहायक साधन

1.5.7 स्वामी-भक्ति का बेचान

1.6 सारांश

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.8 संदर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्यः

इस ईकाई का मुख्य उद्देश्य आपको सामन्तवादी प्रथा, यूरोप में उसकी उत्पत्ति व विकास और सामन्तवाद से सम्बंधित व्यवस्थाओं की जानकारी प्रदान करना है।

1.1 प्रस्तावनाः

सन् 1818 में एम. हेलम (M. Hallam) ने अपनी कृति 'View of the state of Europe during the Middle Ages' प्रकाशित की और उसमें मध्यकालीन समाज की व्यवस्था को सामन्तवादी (Feudal) बताया। इससे पूर्व फ्रांस में राष्ट्रीय असेम्बली ने 14 जुलाई, 1789 में बास्तिल के पतन के बाद घोषित किया था कि "सामन्तशाही शासन पूर्णतया नष्ट हो चुका है।"

तब से बड़ी संख्या में विद्वान् सामन्तवाद, उसकी उत्पत्ति, विकास, विभिन्न शाखाओं एवं अन्ततोगत्वा उसके पतन के कारणों के विवेचन में लग गये। इतिहासकारों द्वारा जागीरदारी, माफी भूमि तथा जमींदारियों के विकास के साथ समीकरण करते हुए सामन्तवादी विशेषताओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

1.2 यूरोपीय सामन्तवाद की परिभाषा (Feudalism)

दीर्घकाल से सामन्तवाद की परिभाषा करना दुरूह हो गया। यह शब्द सामान्यतः आधुनिक प्रचलन का है। पारम्परिक सिद्धान्त के अनुसार यह शब्द कानूनी शब्दावली में "सामन्तवाद" "फियुडम" (Feudum) का द्योतक है जो सैनिक संगठन के सार्वभौम सिद्धान्त में निहित है।

इस प्रकार इस शब्द का बहुत सरल बिश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि सामन्तवाद का इतिहास मुख्य रूप से सामन्तों (Barons) एवं नाइटो (Knights) के सेवा-अनुबन्धों की कहानी है। इन अनुबन्धों की उत्पत्ति का निरूपण करने वाले वैधानिक इतिहासकार, मध्य युग की प्रारम्भिक शताब्दियों की सैनिक आवश्यकताओं ने जमींदारी व्यवस्था के साथ नाइटों की फीस के भुगतानों के अस्तित्व का वर्णन करके ही संतुष्ट हुए।

सामन्तवाद का सैनिक सेवाओं के साथ समीकरण करना सामन्तवाद के इतिहास को एक तत्व तक संकुचित करना है। इसके इतिहास एवं विषय के विस्तृत क्षेत्र को, जिसे समाजवेत्ता अधिक विस्तृत आधार पर गूंथना चाहते हैं, वंचित करना है। अपनी सृजनावस्था में जहां अंग्रेज और जर्मन विद्वानों ने राजतंत्र के पतन, सैनिक जागीरों की स्थापना, उनके स्वरूप तथा संगठन पर न्यायोचित एवं विद्वता पूर्ण ओज का प्रयोग किया, वहां दूसरी विचारधारा के मानने वालों ने सामन्तवाद को राज्य के सन्दर्भ में वर्ग-शासन के संचालक, वस्तु-विनिमय को सामन्तवाद की सम्पन्नता, सामान्तीय अर्थ-व्यवस्था को पूंजीवाद की प्रारम्भिक घटना के रूप में माना है। सारांश में इस प्रकार के दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हैं, परन्तु वे केवल समस्या के इर्द-गिर्द घूमते हैं और अक्सर समाजवेत्ताओं को मद्दे भंवरजाल या पांखड पूर्ण भ्रम की तरफ ललायित करते हैं।

भ्रमजालों से बचने के लिये कुछ विद्वानों ने इस शब्द की परिभाषाऐं दी ही नहीं, उन्होंने केवल सामन्तवाद की विशेषताओं एवं इसके सामान्य तत्वों पर ही जोर दिया है। फिर भी, कुछ विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का साहस किया है।

इस प्रकार जोजेफ आर. (Joseph R. Strayre) स्ट्रेयर और रशटन कोलबोर्न (Rushton Coulbourn)- (Feudalism in History)- के अनुसार सामन्तवाद मुख्य रूप से एक प्रशासकीय व्यवस्था थी न कि आर्थिक या सामाजिक। हालांकि बाद में इसमें प्रत्यक्ष रूप- भेद हो गया और सामाजिक और आर्थिक वातावरण से इसका रूपान्तरण भी हो गया। उन्होंने आगे बताया कि अन्य राजनीतिक संस्थाओं की भाँति सामन्तवाद लगातार विकासोन्मुख रहा। अतः एक स्थैतिक परिभाषा को "सामन्तवाद- की उत्पति कई विशेष चुनौतियों के उत्तर के रूप में हुई" में निहित भावना को जोड़कर परिवर्द्धित किया गया।

स्ट्रेयर (Strayer) के अनुसार यह एक प्रशासकीय व्यवस्था थी जिसमें सामन्तों में सरकार के प्रमुख कार्य करने के अधिकार निहित थे। परन्तु स्ट्रेयर ने केवल पश्चिमी यूरोप के संदर्भ में यह बात कही।

कार्ल स्टीफेन्सन (Carl Stephenson) - (Mediaeval Feudalism) ने भी इसी प्रकार के मनोभाव व्यक्त किये जब उसने फर्डीनेन्ड जोट (Ferdinand Jot) के तर्क की पुष्टि की, जिसने स्वीकार किया है कि इतिहास में यह एक बोलने का स्वीकृत प्रचलन हो गया है कि हर व्यक्ति जागीरदारी की बजाय सामन्तवाद की बात उस दृष्टिकोण से करता है जबकि कतिपय अपवादों को छोड़कर जागीरदार बिना जागीर के होते ही नही थे। उनके अनुसार, सामन्तवाद से हमारा अभिप्राय सही अर्थों में उस विशेष जागीरदारों के संघ से है जिसके पास जागीरें थीं और जिसका विकास कैरोलिंगियन (Carolingian) शासनकाल में हुआ तथा तत्पश्चात यूरोप के अन्य भागों में फैला। जहाँ तक यह संघ सरकारी प्रयोजनों से प्रभावित हुआ, सामन्तवाद निश्चित रूप से राजनीतिक था।

मार्क ब्लोच (Marc Bloch) ने मध्य युगीन सामन्तवाद के स्वीकृत पक्ष के सिद्धान्तों को स्पर्श करती हुई परिभाषा के सर्वोत्तम समन्वयकारी दृष्टिकोण को अपनाया है। इनमें मुख्य कृषक- रैय्यत, बहुतायत में वेतन के बजाय जागीरों का उपयोग, एक विशेषज्ञ योद्धाओं के वर्ग की संरक्षकता, मानव को मानव से बांधने वाली आज्ञाकारिता एवं सत्ता का विकेन्दीकरण और इन सब के मध्य दूसरे प्रकार के संघों का यथा, परिवार और राज्य का जीवित रहना था।

मार्क ब्लोच (Feudal Society) की परिभाषा ने अब तक कतिपय आमान्य तथ्यों को उजागर किया। उसने पूर्ण विश्वास के साथ कहा कि जागीर केवल एक मूल तत्व है यद्यपि समस्त स्थिति में यह तत्व बड़ा ही महत्वपूर्ण है। जागीर की स्थिति अधीनस्थ होने के उपरान्त भी एक समाज सामन्तवादी हो सकता है। उसके अनुसार जागीरदारी भूमिपति और एक मनुष्य के बीच सम्बन्ध था जो सामन्तवाद में एक सारभूत तत्व था।

ब्लोच ने आगे यह स्वीकार किया कि संस्थाओं का निर्माणकारी ढांचा जो समाज को संचालित करता है अन्ततः केवल सम्पूर्ण मानव समाज के वातावरण के ज्ञान द्वारा समझा जा सकता है। उनका मत है कि सामाजिक वर्गीकरण मानव द्वारा सृजित विचारों के अंतिम विश्लेषण में निहित है।

1.3 सामन्वाद की उत्पत्ति और उसका क्रमिक विकास-

1.3.1 ऐतिहासिक परिपेक्षः

साभन्तवाद ने असीम संकटग्रस्त युग में जन्म लिया और कुछ मापदंडों के अनुसार यह उस युग के संकटों का सृजन था। सातवीं और आठवीं शताब्दियों में संकटग्रस्त पश्चिमी समाज को दक्षिण में अरबों से, पूर्व में हंगरीवालों से और उत्तर में स्केन्डीनेविया वालों से संकट उत्पन्न हो गया था। नवी शताब्दी के मध्य तक पश्चिमी यूरोप और ब्रिटेन को थम्मू (Thamu), योन (Yonne), यूरी (Euril), लोयर (Loire) इत्यदि नौ परिवहनों द्वारा पार कर लिये गये। कैरोलिंगियन काल ने चार्ल्स मार्टल (Charles Martel) पेपिन् (Pepin) और शार्लमेन (Charlemagne) जैसे प्रतिभाशाली शासकों को उत्पन्न किया जिन्होंने पश्चिमी विश्व को एकीकृत साम्राज्य की अवधारणा प्रदान की।

इस काल में तथा इसके पूर्व काल में जागीरदारी अज्ञात नहीं थी परन्तु कालान्तर में जिस प्रकार उसे निर्दिष्ट किया गया उससे भिन्न रूप में थी। हम "प्रीकेरियम" (Precarium) सर "प्रीकेरिया" (Precarial) के बारे में सुनते हैं, जिसका अर्थ किसी के द्वारा अनुदानित जमीन अनुदानकर्ता के प्रसादकाल तक ही किसी के पास रहती थी। प्रचलित रोमन कानून (Roman Law) के अन्तर्गत इस प्रकार की जागीर किसी भी समय समाप्त की जा सकती थी। परन्तु कालान्तर में पश्चिमी यूरोप के फ्रेंकिश राजतन्त्र (Frankish Kingdom) में भाड़े के भुगतान या निर्धारित सेवा के बदले में अनेक वर्षों या आजीवन के लिये जागीर वैध अधिकार बन गया।

1.3.2 जागीरदारी की (Vassalage) उत्पत्तिः

सामन्तवाद से घनिष्ठ सम्बन्धवाली कतिपय संस्थाओं का उदय यूरोप के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न समय में हुआ। मेरोविंगियन फ्रेंकों (Merovingian Franks) के अधीन गौल प्रदेशों में सातवीं शताब्दी में सर्वप्रमि जागीरदारी दृष्टिगोचर हुई। इंग्लैंड में तो यह बहुत बाद में आई।

पूर्ण संकटकाल में गरीब और निर्बल लोग राज्य के संरक्षण पर निर्भर नहीं रह सकते थे अतः उन्होंने शक्तिशाली स्थानीय रईसों का संरक्षण प्राप्त कर लिया। ये लोग रईसों की कृपा पर आश्रित हो गये या जैसा कि जर्मन भाषा में कहा जाता था, उनकी 'मुन्डेबर्डिस' (Mundeburdis) या दया के अधीन हो गये। संरक्षक ने अपने आसमियों को सुविधापूर्ण स्थिति में रखने का समझौता किया। उन्हें संरक्षण प्रदान किया, उनके कानूनी मुकदमों को लड़ने और युद्ध में उनके नेतृत्व का वायदा किया। संरक्षक को "सीनियर" (Senior) सम्बोधित किया जाने लगा और आसामी "वास्स" (Vassus) कहलाने लगे। आसामी गुलाम नहीं था पर वह स्वेच्छा से आश्रित था। आसामी डयूक्स, (Dukes) काउन्टस् (Counts) रॉयल ऑफिसरस् (Royal Officers) या राज्य कर्मचारियो, और राजा तक का 'वासल' (Vassal) भी बन सकता था। अंतिम परिस्थिति में राजा अपने जागीरदारों पर दुहरी सत्ता जता सकता था— प्रथम सार्वजनिक सत्ता राजा के रूप में, और द्वितीय एक विशेष संरक्षणकर्ता के रूप में।

व्यक्ति राज्य के अधीनस्थ होने के स्थान पर अब राजा का व्यक्तिगत अधीनस्थ हो गया। राज्य की जनसंख्या व्यक्तियों के समूहों के एक दूसरे के निजी सम्बन्धों

के आधार पर गठित होने लगी। इस प्रकार व्यक्ति की अधीनस्थता ने आगे चलकर भूमि की अधीनस्थता का मार्ग प्रशस्त किया।

इन जोतों का क्या स्वरूप था ? गॉल के क्षेत्र में ग्रामीण क्षेत्र बड़ी जागीरों में विभाजित थे जिन्हें "विला" (Villae) कहा जाता था। इंग्लैंड में जमींदारी या "मैनोरियल" (Manorial) प्रथा के अस्तित्व के आगमन को समानान्तर स्थिति देखा जा सकता है। "विला" की भूमि दो भागों में बंटी हुई थी। प्रथम भाग तो मालिक के मकान की आसपास की जमीन थी, जिस पर वह स्वयं खेती करता था। दूसरा भाग कई जोतों में बंटा हुआ था जिन्हें स्वामी अपने गुलामों या स्वतंत्र व्यक्तियों को कृषि के लिये देता था।

हर कृषक-मजदूर अपने जोत के क्षेत्र पर स्वयं के लाभार्थ कृषि करता था पर इसके बदले वह मालिक को अनिवार्य रूप से किराया देता था तथा नियत सेवायें भी अर्पित करता था। एक "विला" अपने आप में आत्मनिर्भर था। कृषकों के अतिरिक्त वहाँ श्रमिक और कारीगर भी थे जो औजार और उपकरण बनाते थे व उनकी मरम्मत करते थे। "विला" में एक मिल, एक शराब भट्टी, एक लोहा गर्म करने की खुली भट्टी और एक छोटा गिरजा होता था। "विला" के आस-पास के जंगल भूस्वामी के अधिकार में रहते थे परन्तु वह कृषक-मजदूरों को किराये पर उसके उपयोग का अधिकार देता था।

1.3.3. माफी भूमि (benefice) की उत्पत्ति-

बड़े शक्तिशाली भूमिपतियों की भू-सम्पति के साथ साथ स्वतंत्र व्यक्तियों की छोटी भू-सम्पतियॉ भी थीं। आठवीं शताब्दी के दौरान ये स्वतंत्र व्यक्ति लगातार इन छोटी भू-सम्पतियों की रक्षा करने में बड़ी कठिनाई अनुभव कर रहे थे। उनका विक्रय समस्या का समाधान नहीं था क्योंकि उनको बेचने से अधिकर प्रमाण पत्र वाली कीमत ही मिल सकती थी। इसलिए उन्होंने अपने आपको पास में रहने वाले शक्तिशाली भूमिपतियों के हवाले कर दिया।

शक्तिशाली भूमिपतियों ने इन मुक्त अथवा छोटे भू-सम्पतिधारियों को अपने जीवनकाल में जमीन पर खेती करने का अधिकार प्रदान किया। यह माफी भूमि, जिसे "बेनिफिस' कहते थे, इसका अर्थ था कि छोटे भूमिपति इस जमीन को अनुग्रह के रूप में रखते थे। इस प्रकार इस भूमि का अनुग्रह के रूप में स्वीकार करना अपनी स्वतंत्रता को बेचने के समान था। इस प्रकार की माफी भूमि, पूर्ण स्वामित्ववाली या "अलोडियल" (Allodial) भूमि से भिन्न थी जो शक्तिशाली भूमिपतियों के पास थी।

माफी भूमि त्वरित गति से बढने लगी। चर्च ने, जिसके पास बड़ी भू-सम्पति थी जिस पर वह खुद अपने "सर्फ" (Serf) कृषकों द्वारा खेती कर सकता था, उसमें से कुछ भाग स्वतंत्र व्यक्तियों को किराए पर देने की प्रथा आरम्भ करी। इस पर स्वतंत्र व्यक्ति कृषि करते थे। कृषक-की मृत्यु पर यह भूमि अच्छी हालत में चर्च को वापस लौटाई जाती थी। इस प्रकार की जोत (Precarium) रोमन कानून को पूर्व में ज्ञात थी। कुछ दशाओं में अनुदानगृहीता इस प्रकार के अनुदान के बदले में उसी कीमत की भूमि चर्च को उपहार के रूप में भेंट करता था। अपने जीवन

काल में यह दोनों जमीनों को जोतता था पर उसकी मृत्यु के बाद दोनों ही जमीनें चर्च के हाथों चली जाती थी। यह व्यवस्था दोनों पक्षों को उचित लगती थी। अनुदानगृही अपने जीवनकाल में दुहरी आमदनी का आनन्द लेता था और अनुदानगृही की मृत्यु पर चर्च की सम्पत्ति दुगुनी हो जाती थी। इस प्रकार पूर्ण स्वामित्व वाली जमीनें धीरे-धीरे अदृश्य हो गई और बड़े भूमिपतियों व चर्च की माफी भूमि प्रति दिन बढ़ती गई।

अनुदानगृहीता अपने अनुदानकर्त्ता के आभार के बन्धन के जकड़े रहते थे। वे अनुदानकर्ता की निष्ठापूर्वक सेवा करते थे और उनके साथ रण-क्षेत्र में प्रमाण करते थे। भूमिपतियों की शक्ति के विस्तार के साथ-साथ उन्होंने उसमें आगे वृद्धि करने के लिये और भूमि अनुदान के रूप में प्रदान की। राजा को इन भूमिपतियों व उनके अनुचरों की सेवा की आवश्यकता पड़ी और उसने इनकी स्वामी-भक्ति जीतने के लिये और जमीनें अनुदान में प्रदान की। राजाओं ने चर्च की सम्पत्ति को भी हथियाने का प्रयास किया पर चूंकि चर्च की सम्पत्ति तत्कालीन कानून के अनुसार हस्तांतरण योग्य नहीं थी इसलिये उसको सर्वथा रूप से अनुदानगृहीता द्वारा पूर्णतः अपने अधिकार में नहीं लिया जा सका।

राजाओं द्वारा चर्च भू-सम्पति को योद्धाओं में वितरण करने का एक अन्य कारण यह था कि योद्धाओं के खर्चे बहुत भारी थे। योद्धाओं में केवल पैदल सैनिक ही नहीं थे वरन् सशस्त्र अश्वारोही भी थे और अश्वारोही सेना की सामग्री बड़ी महँगी थी। जो भू-राजस्व योद्धाओं को स्वीकृत किया जाता था वह सैनिक सेवा के बदले में हर्जाने के रूप में होता था। इस प्रकार यह माना जाने लगा कि भूपतियों आदि को जमींदारी के साथ सैनिक सेवा करना अनिवार्य है। इस तरह सभी भू-सम्पत्ति अनुदान भोगियों के लिये अनुदानकर्ता के साथ रणक्षेत्र में जाना आवश्यकत कर्त्तव्य हो गया। इस प्रकार आठवीं शताब्दी की माफी भूमि ग्यारहवीं शताब्दी की जागीर प्रथा (फीफ) Fief की प्रत्यक्ष अग्रगामी बन गई।

जागीर (फीफ) की दूसरी विशेषता यह थी कि इसको धारण करने वाला अपनी जागीर में राज्य की सभी शक्तियों का प्रयोग करता था। वह कर लगाता था, न्याय करता था जागीर के लोगों को युद्ध में भाग लेने के लिये बुलाता था।

कुछ जागीरदार तो इतने शक्तिशाली हो गये कि उन्होंने अपनी जागीरों में सरकारी अधिकारियों के आगमन को एवं उनके द्वारा किसी प्रकार की अधिकार जताने की प्रवृत्ति को स्वंय राजा प्रतिबंधित करने के लिए को बाधित कर दिया। यद्यपि आठवीं शती में सामन्तवाद के सभी आवश्यक तत्व जैसे कि स्तुति करना, माफी भूमि और उन्मुक्ति मौजूद थे, पर वे केवल नवीं शताब्दी में जाकर ही व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त कर सके।

1.4 यूरोप में सामन्तवादी प्रथा का विस्तारः

दसवीं शताब्दी में राजतंत्र के पतन के बाद पश्चिमी यूरोप एक अनिश्चितता की स्थिति में आ गया। जिस साम्राज्य को शार्लमेन ने संगठित करने का प्रयास किया था, उसका स्वरूप हिल रहा था। स्थानीय सरदारों और उनके अधिकारियों के बीच

घनिष्ठता, शार्लमेन और उसके रईसों के बीच घनिष्ठता से कहीं अधिक दृढ़ थी। शार्लमेन के पश्चात् यह व्यवस्था भी धराशायी हो गई और पश्चिमी विश्व में केन्द्रीय सत्ता समाप्त हो गई।

बाह्य आक्रमणों व आन्तरिक कलहों का सामना करते हुए स्थानीय सरदारों ने अधिक स्वतंत्रता धारण कर ली। पर वे तदनुसार अपने घर-बार व परिवार की सुरक्षा के विकट कार्य एवं अपने अधिकारियों को सुरक्षा प्रदान करने के कार्य में व्यस्त हो गये। यह यूरोप में सामन्तवाद की उत्पत्ति थी।

इतिहासकारों ने यूरोप में सामन्तवाद के दो पृथक् चरणों का निरूपण किया है। प्रथम चरण ग्यारहवीं शताब्दी तक रहा जबकि दूसरा चरण तेरहवीं शताब्दी तक चलता रहा जिसके बाद यूरोप में सामन्तवाद पतनोन्मुख हो गया।

यूरोप को पुनः आबाद करना, दूरियों का कम होना, व्यापार की समृद्धि में रत शहरी मध्यम श्रेणी का उदय जैसे विषयों के सन्दर्भ में सामन्तवाद का द्वितीय चरण, प्रथम चरण से अधिक महत्वपूर्ण और भिन्न था। राजा भी व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहित करते थे क्योंकि इससे उन्हें कर और चुंगी के रूप में अधिक धन प्राप्त होता था।

कपड़ा एक महत्वपूर्ण निर्यात की वस्तु हो गई। फलेन्डर्स (Flanders), पिकार्डी (Picardy), लोम्बार्डी (Lombardy), इत्यादि स्थान वस्त्र केन्द्र के रूप में उभरने लगे। रूस के व्यापारिक मार्ग बंद कर दिये गये और उनके स्थान पर बाल्टिक सागर व पश्चिमी तट के बन्दरगाहों के उपयोग में रूचि बढ़ने लगी।

इस आर्थिक क्रांति के आगमन के साथ सामाजिक मूल्यों में भी परिवर्तन का दौर आया। कारीगर और व्यापारी समाज के लिये अपरिहार्य बन गये। इस प्रकार मध्यकालीन अर्थव्यवस्था पर व्यापारियों का, न कि उत्पादकों का, प्रभुत्व स्थापित हो गया।

उत्तरकालीन सामन्तवाद, जोत के क्षेत्रों की समितियों का एक सिलसिला सा बन गया। स्थानीय भूमिपति अब भी महत्वपूर्ण कार्य निपटाता था किन्तु वह उच्च सत्ता से निर्देशित व नियंत्रित किया जा सकता था।

1.5 सामन्ती जोत (Feudal Tenure) के सिद्धान्तः

अब हम सामन्तीय जोत को निर्धारित करने वाली विशेषताओं के नियत सिद्धान्तों पर संक्षेप में दृष्टिपात करते हैं।

1.5.1 नियमित अधीनता और स्वामी-भक्तिः

सिंहावलोकन काल के अन्तर्गत एक ऐसी स्थिति आई कि जब राज्य और परिवार कोई सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकते थे। ग्रामीण समुदाय अपने को सुरक्षित रखने में असक्षम था और शहरी समुदाय बहुत ही कम संगठित था। (यह सामन्तवाद का प्रथम चरण था) ऐसी परिस्थितियों में निर्बल लोग शक्तिशाली (स्थानीय सरदार) के साये में चले गये जबकि शक्तिशाली व्यक्तियों ने अपनी स्थिति को बनाये रखने में

अपने अधीनस्थों का सहारा लिया। इस प्रकार एक शक्तिशाली आदमी रक्षक और रक्षित दोनों था।

प्रमुख ने अपने मातहतों का भार ग्रहण किया और इस प्रकार वह उनका संरक्षक बन गया। अधीनस्थों ने अपने आपको रक्षक के सुपुर्द कर दिया। यह आभार 'सेवा' के नाम से जाना जाने लगा। राजा ने भूमिपतियों को उनके मातहतों की निष्ठा के लिये उत्तरदायी बनाया। अब सवाल रहा प्रमुख की राजा के प्रति स्वामी-भक्ति का इस समस्या ने राजा को अपने भूस्वामियों की निष्ठा सुनिश्चित करने के लिये भूमि अनुदान में देने के लिये प्रेरित किया।

मातहत व्यक्तियों ने अपने स्वामियों से कुछ और (खाने-पीने के साधनों आदि की) अभिलाषा की। प्रमुख अपने संरक्षक को अपने मकान पर रखता था, खाना-कपड़ा देता था, देख-भाल करता था या जीवीकोपार्जन के लिये उसको भूमि-प्रदान करता था। इस प्रकार प्रदान की गई भूमि पुरस्कार की अपेक्षा वेतन के रूप में अधिक थी। इस व्यवस्था से प्रत्यक्ष लाभ यह था कि भू-सम्पति बिना किसी गंभीर अड़चन के भूमिपति को वापस उसी स्थिति में लौटाई जा सकती थी। (यह उस समय थी जब पैतृक और उत्तराधिकार कानून प्रचलन में नहीं थे) इस प्रकार यह अनुदान जागीर-प्रथा (फीफ) की उत्पति थी। आधारभूत रूप से यह एक आर्थिक अवधारणा थी। जागीर का प्रदान करना कुछ देने के रूप में आभार नहीं था पर यह एक कुछ करने के रूप में दायित्व था। इतना ही नहीं जागीर केवल सेवा का दायित्व ही नहीं था पर इसमें व्यवसायित विशेषज्ञता के सुनिश्चित तत्व एवं व्यक्तिगत प्रक्रिया भी अन्तग्रस्त थी। यह एक वृत्तिकाग्राही आभुक्ति थी।

1.5.3 उत्तराधिकारः

नवीं शताब्दी के अन्त में पिता से पुत्र को उत्तराधिकार में जागीर मिलना प्रथागत बन गया। दसवीं शताब्दी तक यह एक स्वीकृत तथ्य बन गया। किसी पूर्व जागीरदार की मृत्यु हो जाने पर जागीर का कब्जा स्वतः ही किसी दूसरे को नहीं मिलता था। परन्तु कुछ प्रबल रूप से निर्धारित परिस्थितियों के अतिरिक्त भूमिपति जागीरदार को उसके वास्तविक उत्तराधिकारी को दीक्षित करने को मना नहीं कर सकता था बशर्ते उस उत्तराधिकारी ने पहले नियमित अधीनता स्वीकार की हो। इस अर्थ में वंशानुगत सिद्धान्त की विजय लुप्तमान अधिकारों पर सामाजिक शक्तियों की विजय थी।

1.5.3 ज्येष्ठाधिकार (Primogeniture)

वैध रूप से जागीर (फीफ) अविभाज्य थी। पितृदाय सम्पति के विघटन से सेवायें प्रदान करने में संभ्रान्ति पैदा हो सकती थी। और विभिन्न सहभागियों के बीच संतोषजनक रूप से सेवाओं का अनुभाजन करना बहुत कठिन कार्य था। इस प्रकार ज्येष्ठाधिकार नियम को सामन्ती अवधि को निरन्तरता प्रदान करने के लिये व्यावहारिक विनिमय की तरह अपना लिया गया।

परिवार के कनिष्ठ बच्चों के हितार्थ एक रिवाज़ अस्तित्व में आया जिसे पेरेज (Parage) कहते थे। इसके अन्तर्गत एक जागीर कई सह-उत्तराधिकारियों में विभाजित की जा सकती थी बशर्ते उनमें से किसी एक ने सबकी तरफ से नियमित अधीनता स्वीकार की हो।

1.5.4 महिला उत्तराधिकार और प्रतिपाल्यता (वार्डशिप Wardship) :

इस विचारवस्तु से सम्बन्धित एक विचित्र समस्या पैदा हुई कि उस दशा में क्या होगा जब कि उत्तराधिकार के लिये कोई पुरुष उत्तराधिकारी न हो तथा केवल किसी घराने की लड़की या लड़कियाँ ही उपलब्ध हों ? एक महिला द्वारा किसी अदालत को लगाने का दृश्य यथार्थ में विध्न पैदा करने वाला नहीं था पर क्योंकि महिलायें हथियारों से लैस होने में असमर्थ थीं इसलिये उनके पति ही जागीर में शक्तियों के प्रयुक्त करने वाले माने जाते थे।

प्रतिपाल्यता (वार्डशिप) एक अल्पवयस्क उत्तराधिकारी की स्थिति में एक स्वीकृत प्रस्ताव था। यद्यपि प्रतिपाल्यता (वार्डशिप) जिसने अल्पकालिक जागीरदारी की स्थिति पैदा की, वहीं यह जागीरदारी के मूल स्वरूप या उसके सम्बन्धों पर आघात करने की ओर भी प्रवृत हुई।

1.5.5 उप-सामन्तवाद (Sub-infeudation)

उप-सामन्तवाद की प्रथा यूरोप में विद्यमान व्यवस्था से प्रमाणित थी और यह चरण ब चरण रिसती हुई जमीन जोतने वाले के स्वयं की गिरफ्त में होती जा रही थी, जो एक कृषक-दास या दास था।

1.5.6 राहत और सहायक साधनः

पैतृक उत्तराधिकार, अधिकार का रूप लेने से पूर्व एक अनुग्रह के रूप में माना जाता था और एक नया जागीरदार अपने भूमिपति को उपहार देकर आभार प्रकट करता था। आवश्यक रूप से रीति-रिवाजों पर आधारित सामन्ती ढांचे में प्रत्येक स्वैच्छिक उपहार का अन्ततः एक आभार में रूपान्तरण हो गया। ज़ागीरदार का उत्तरदायित्व केवल सैनिक सेवा तक सीमित नहीं था इसलिये वह विभिन्न अवसरो, त्यौहारों व अन्य पर्वों पर अपने भूमिपति को राहत प्रदान करता था।

1.5.7 स्वामी-भक्ति का बेचान (अन्य संक्रामण):

क्योंकि अनुदान की मौलिक संदिग्ध प्रकृति का प्रभाव समाप्त हो गया, जागीरदार धन की आवश्यकता अथवा उदारता के कारण अपनी भूमि को माफी भूमि के रूप में प्रदान करने की ओर अधिकाधिक अग्रसर होने लगे।

1.6 सारांश

मध्यकालीन यूरोप के समाज के विकास के विभिन्न चरणों में सामन्तवाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण द्योतक चिन्ह था। नवीं शताब्दी के आसपास में उदित, केन्द्रीय सत्ता में पतनावस्था के साथ यह करीब चार शताब्दियों तक क्रियान्वित रही जिसके बाद इसका पतन प्रारम्भ हो गया। यह उन निश्चित विशेषताओं से विभूषित थी जो सामन्तवाद् के पतन के बाद भी चिरस्थायी रही।

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. यूरोप में सामन्तवाद की उत्पत्ति और विकास का निरूपण कीजिए।
2. मध्यकालीन यूरोप की सामन्तवादी संस्थाओं की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं ?

1.8 संदर्भ ग्रन्थ :

1. Marc Bloch: Feudal Society, London, 1961

2. Rushton Coulbourn: Feudalism in History, New York, 1956

3. F.L. Ganshot Feudalism, London, 1952

4. F. Lot:: The End of the Ancient World and the Beginning of Middle Age,1931.

5. Carl Stephenson: Mediaeval Feudalism, New York, 1961.

6. Max Weber: The theory of Social and Economic Organisation, - London, 1964

7. The Cambridge Mediaeval History, Volume 11. Cambridge University Press,1913.

इकाई-2
यूरोप में मध्यकालीन राजनीतिक विचारधारा और राजनैतिक संगठन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावनाः

मध्य युग के आगमन के समय यूरोप की राजनीतिक व्यवस्था

2.2 सामंतवाद के उद्भव के विषय में विभिन्न धारणाऐं

2.2.1 बूनर की धारणा

2.2.2 पीरेन का मत

2.2.3 मार्क ब्लाच की धारणा

2.2.4 पेरी एंडरसन के विचार

2.3 सामंतवाद का स्वरुप

2.3.1 सामंतवाद के विभिन्न घटक

2.3.2 राजा व सामंतों के पारस्परिक सम्बन्ध

2.4 मध्यकालीन युग में विभिन्न देशों में राजतंत्र की प्रगति

2.4.1 पश्चिम फ्रांस

2.4.2 पूर्वी फ्रेंकिश राज्य-जर्मनी

2.4.3 इंगलैंड

2.4.4 स्केन्डनेविया

2.4.5. स्पेन

2.4.6 इटली

2.4.7 रूस

2.5 सामंतवाद के पराभाव के कारण

2.6 राष्ट्रीय राज्यों के उदय के कारण

2.7 निष्कर्षः मध्य युग में राजनीतिक संगठन व विचारधारा के प्रमुख लक्षण

2.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्यः

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको मध्यकालीन युग में यूरोप की राजनीतिक विचारधारा और राजनीतिक संगठन के बारे में संक्षिप्त जानकारी देना है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको निम्नलिखित बिन्दुओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त हो जायेगा।

- मध्ययुग के आगमन के समय में यूरोप की राजनैतिक व्यवस्था
- सामन्तवाद के उद्भव के विषय में विभिन्न धारणाऐं
- सामन्तवाद का स्वरूप
- यूरोप के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में राजतन्त्र की प्रगति
- सामन्तवाद के पराभाव के कारण
- राष्ट्रीय राज्यों के उदय के कारण
- निष्कर्षः मध्य युग में राजनीतिक संगठन व विचारधारा के प्रमुख लक्षण

2.1 प्रस्तावना : मध्य युग के आगमन के समय यूरोप की राजनीतिक व्यवस्था

सिडनी पेन्टर के अनुसार पश्चिमी यूरोप में छठी से दसवीं सदी तक का युग प्रारम्भिक जर्मन और रोमन सभ्यताओं से मध्ययुगीन सभ्यता की ओर से जाने वाला युग था। इस काल में जर्मन जातियों ने स्थायी रूप से रहना शुरू किया तथा शासन व्यवस्था को संगठित किया। यूरोपीय इतिहासकारों ने इस शासन व्यवस्था को जर्मनिक राजतन्त्र (Germanic Monarchy) की संज्ञा दी है। फ्रांस में यह व्यवस्था उपर्युक्त चार शताब्दियों में प्रचलित रही तथा इस काल के अन्त में स्केन्डनेविया व रूस के प्रदेशों में भी इसी प्रकार की शासन प्रणाली स्थापित हो गई थी।

उस समय के राजा के दो प्रमुख कर्त्तव्य थे। वे अपने सैनिकों का युद्ध में नेतृत्व करते थे तथा अपने राज्यों में पारंपरिक कानूनों का पालन कराते थे। अधिकांश राज्यों में राजा का चुनाव होता था किन्तु यह चुनाव राज्य परिवार के सदस्यों तक ही सीमित रहता था। सभी राजा अपने राज्य को पारिवारिक सम्पत्ति मानते थे। अतएव उनके राज्य का विभाजन उनके पुत्रों में ही होता था। उस समय की राजनीति पर चर्च का गहरा प्रभाव था। इसाई धर्म को राज्य धर्म घोषित किया जाता था। चर्च के प्रभाव को मानते हुए पश्चिमी फ्रांस के महान् सम्राट शार्लमेन ने नौवीं शताब्दी के अन्त में एक समारोह में पोप से अपना ताज ग्रहण किया था। यद्यपि उसने तथा उसके उत्तराधिकारियों ने स्वंय को रोमन साम्राज्य का प्रतिनिधि बताया किन्तु अपनी शासन व्यवस्था में रोमन साम्राज्य की परम्पराओं को नहीं अपनाया।

इंगलैण्ड के एंग्लो- (Anglo-Saxon) विजेताओं ने वहाँ पर अपने अपने छोटे-छोटे राज्य स्थापित किये। इन प्रदेशों के राजा अपने मुख्य सहायकों की एक काऊंसिल, जिसे विटान (Witan) कहते थे, की सलाह पर राज्य करते थे। वे आपस में एक दूसरे से लड़ते रहते थे। अपने शत्रु को हटाने के बाद या तो वे उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लेते थे अथवा उससे अधीनता स्वीकार करा के वार्षिक कर वसूल करते थे। आठवीं सदी में इंग्लैण्ड तथा नौवीं में फ्रांस पर स्केन्डनेविया के अनेक आक्रमण हुए। इनसे इन दोनों प्रदेशों में अराजकता फैल गई। ऐसी परिस्थितियों में पहले पश्चिमी फ्रांस एवं बाद में इंग्लैण्ड तथा अन्य देशों में सामन्तवाद नामक एक नयी राजनीतिक प्रणाली का उद्भव व विकास हुआ। यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रदेशों में इस प्रणाली में एकरूपता नहीं पाई जाती किन्तु मध्यकालीन यूरोप में इस व्यवस्था ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

2.2 सामन्तवाद के उद्भव के सम्बन्ध में विभिन्न धारणायें:

आधुनिक काल में यूरोप के अनेक विद्वानों ने सामन्तवादी प्रणाली के उद्भव व विकास के बारे में भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये है। इनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों की धारणाओं का विवेचन यहाँ पर किया गया है।

2.2.1 बूनर की धारणा:

बूनर नामक जर्मन इतिहासकार ने सामन्तवाद का मूल सम्बन्ध घोड़ो से बताया है। उसके अनुसार 733 ई0 में पेरिस के निकट अरब आक्रमणकारियों को हराने के बाद फ्रांसीसी सम्राट चार्ल्स मार्तेल उनका पीछा नहीं कर पाया क्योंकि वे द्रुतगामी घोड़ों पर सवार थे। अतएव उसने अपनी सेना में घुडसवार दस्ते के गठन के लिये संसाधन जुटाने आरम्भ किये। उसने ऐसी संस्थाओं, जिनमें चर्च भी सम्मिलित था, से जिनके पास भूमि अधिक थी भूमि ले ली। मार्तेल ने वेतन के स्थान पर सैनिकों को भूमि देना आरम्भ किया। इस प्रकार बूनर के मत में सामन्तवाद का उदय हुआ। लेकिन एक लम्बे समय तक चलने वाली विशाल सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संस्था के उद्भव और विकास का श्रेय घोड़े की लगाम जैसी सामान्य वस्तु को देना उचित नहीं है।

2.2.2 पीरेन का मत:

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में बेल्जियन इतिहासकार हेनरी पीरेन ने इस व्यवस्था के आर्थिक पहलू को महत्व देते हुए बताया कि उस समय की यूरोप की शहरी अर्थव्यवस्था का आधार दूर-दराज के देशों से व्यापार करना था। सातवीं व आठवीं सदी के अन्त में अरबों ने भूमध्य सागर के अनेक महत्वपूर्ण स्थानों पर नियन्त्रण स्थापित करके यूरोप के इस शानदार व्यापार को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके फलस्वरूप यूरोपीय अर्थव्यवस्था स्थानीय व्यापार और ग्रामीण संसाधनों पर आश्रित होकर रह गई। ग्यारहवीं सदी के धर्म युद्धों में इसाईयों ने अरबों को जिब्राल्टर व सार्डिनिया से खदेड़ दिया। इसके परिणामस्वरूप फिर से सुदूर क्षेत्रों से व्यापार आरम्भ हो गया और यूरोपीय अर्थव्यवस्था का शहरी रूप पुनः लौट आया। इसके साथ ही सामन्तवाद का पराभाव हो गया। इस प्रकार पीरेन ने सामन्तवाद और व्यापार के बीच द्वन्द्व विभाजन (Dichotomy) दर्शाया है।

2.2.3 मार्क ब्लाच की धारणाः

मार्क ब्लाच (Mark Block) नामक फ्रांसीसी इतिहासकार ने लिखा है कि पांचवीं शताब्दी में यूरोप पर जर्मन कबाईलियों के निरन्तर आक्रमणों ने विशाल रोमन साम्राज्य को ध्वस्त कर दिया। इसके बाद अरबों के आक्रमण हुए। उनके बाद हंगरी के मग्यारों और स्केन्डनेवियनों के आक्रमण हुए। इन लगातार हमलों से पश्चिमी यूरोप में असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो गई तथा वहाँ की अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। पश्चिमी यूरोप का प्रत्येक व्यक्ति सुरक्षा व आजिविका की तलाश में लग गया। इसके फलस्वरूप परस्पर निर्भरता के सम्बन्धों का सूत्रपात हुआ। समाज के सभी वर्ग इन सम्बन्धों में भागीदार बने। कृषकों ने अपनी भूमि व अन्य संसाधन स्थानीय जमींदारों को सौंप दिये। इसके बदले में जमींदारों ने उन्हें सुरक्षा व आजीविका प्रदान करने का वचन दिया। कृषक यदि जमींदार के खेतों में बिना मजदूरी के काम करता रहे तो वह अपनी भूमि वापस ले सकता था।

स्थानीय जमींदार ने अपनी तथा अपने कृषकों की सुरक्षा के बदले में अपनी जमीनें व संसाधन बड़े जमींदार को इस शर्त पर सौंप दिये कि यदि वह अपनी जमीनें वापस लेना चाहे तो उसे बड़े जमींदार को सैन्य सेवा प्रदान करनी होगी। इस प्रकार छोटा जमींदार बड़े जमींदार का अधीनस्थ सामन्त हो गया। इस प्रक्रिया में राजा व कृषक के अतिरिक्त हर एक व्यक्ति किसी न किसी के अधीन हो गया।

राजा किसी के अधीन नहीं था और कृषक किसी का स्वामी नहीं था। समय के साथ-साथ इन सम्बन्धों ने स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप धार्मिक विचारधारा और सांस्कृतिक परिवेश को जन्म दिया।

2.2.4 पेरी एंडरसेन के विचारः

पेरी एंडरसन ने इसे एक ऐसी दीर्घ प्रक्रिया माना है जो समाज के मूल में होती रही है। उसके अनुसार इस संस्था का जन्म दो सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच कड़े संघर्ष के फलस्वरूप हुआ। एक ओर प्राचीन यूरोपियन समाज जो दासता पर आधारित था दास श्रम में कमी आ जाने के कारण कम उत्पादन और अधिक मांग की समस्याओं से घिरा हुआ था। उत्पादन व मांग में बीच अन्तर बढ़ता जा रहा था। उत्पादन बढ़ाने के बेहतर तरीके खोजने व उन्हें काम में लाने में दासों को कोई रूचि नहीं थी। इस प्रकार प्राचीन यूनानी सभ्यता संकट के दौर से गुजर रही थी। जर्मन देशों का कबाईली सामाजिक संगठन, जो समता पर आधारित था, भी एक अन्य प्रकार के संकट से गुजर रहा था। एक ओर तो सामाजिक व्यवस्था पर विभिन्न स्तरों के उदय के कारण दबाव पड़ रहा था तो दूसरी ओर रोमन सामन्तवाद का बाह्य प्रभाव भी इस पर पड़ रहा था।

आधारित यूरोपीय समाज तथा समता पर आधारित कबाईली जर्मन समाज के मध्य हुए संघर्ष के फलस्वरूप दोनों ही समाज नष्ट हो गये और एक नये समाज का जन्म हुआ जिसका नाम था सामन्तवादी समाज।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि विभिन्न विद्वानों ने अपने विश्लेषणों में किसी न किसी एक पहलू पर विशेष बल दिया है। वास्तव में समाज के सभी स्तरों पर राजनीतिक सांस्कृतिक, आर्थिक व संस्थागत तत्वों के पारस्परिक प्रभाव के

फलस्वरूप ही सामन्तवाद का जन्म हुआ। इसके ऐतिहासिक स्वरूप को देखने से पता चलता है कि यह प्रणाली यूनान एवं रोम के दास-समाज एवं आज के पूंजीवादी समाज के बीच की एक व्यवस्था थी।

2.3 सामन्तवाद का स्वरूपः

2.3.1 सामन्तवादी व्यवस्था के घटक व उनकी स्थितिः

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में सामन्तवाद का विकास वहाँ की स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार हुआ लेकिनव फिर भी हम सामन्तवाद की विशेषताओं का अध्ययन एक समग्र दृष्टि से कर सकते है।

सिडनी पेन्टर के मत में सामन्तवादी व्यवस्था में एक ऐसे पिरेमिड (Pyramid) का निर्माण हुआ जिसमें राजा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था तथा उसके नीचे सामन्त व उप-सामन्त तथा कृषक होते थे। राजा अपने सामन्तों को एक क्षेत्र की भूमि का स्वामित्व प्रदान करता था। सामन्त अपने उप-सामंतों को अपने क्षेत्र में भूमि का अनुदान देता था। आम तोर पर राजा, सामन्त और उप-सामन्त अपने क्षेत्र की कुछ भूमि में स्वय खेती कराते थे तथा शेष भूमि को कृषक दासों को खेती के लिये दे देते थे। इसके बदले में कृषकों को भूमि का लगान देना पड़ता था तथा उन्हें अपने स्वामी के खेतों व गढ़ी में उसके लिये परिश्रम करना पड़ता था। इस प्रकार सामन्तवादी व्यवस्था में दो प्रमुख घटक थे : (1) स्वामी (2) कृषक दास

(1) स्वामियों का वर्गः

(अ) नाईट्स (Knights) : सबसे निचले स्तर के स्वामी "नाईट्स" कहलाते थे। इन्हें सैन्य सेवा के बदले में राजा या सामन्त जागीरे देते थे। आरम्भ में ऐसी जागीरें सेवा काल के लिये दी जाती थी किन्तु धीरे-धीरे से वंशागत हो गई।

(ब) सामन्त : एक सामन्त लगभग चार हजार एकड़ भूमि का स्वामी होता था। यह भूमि सामान्य रूप से तीन भागों डिमीन, काश्त और परती में विभक्त होती थी। पहले दो भागों में खेती होती थी। तीसरे भाग में चरागाह व जंगल होते थे जिनका उपयोग सब कर सकते थे। डिमिन व काश्त किस्म की भूमि में उत्पादन कृषक दासों द्वारा कराया जाता था। इन दो किस्मों की भूमि सामन्तों के क्षेत्र में अनेक स्थानों में फैली हुई होती थी।

(स) बैनल (लार्ड): इनका सीधा सम्बन्ध राजा से था। इनके अधीन भूमि पर इनका पूर्ण नियन्त्रण था

(2) कृषक दासः इनके दो वर्ग थे। पहले वर्ग में वे कृषक थे जो राजा, सामन्त बैरन, लार्ड आदि की भूमि पर कार्य करते थे। उन्हें अपने स्वामियों की गढ़ी में भी कार्य करना पड़ता था। इनकी दशा अच्छी नहीं थी। उनका अपने स्वामी के खेतों के उत्पादन पर कोई अधिकार नहीं था।

दूसरे वर्ग में वे कृषक थे जिन्हें भूमि को जोतने का अधिकार राजा अथवा सामन्तों से मिलता था। यद्यपि यह अधिकार वंशागत होता था किन्तु कृषक को भूमि पर स्वामीतव के अधिकार नहीं दिये जाते थे। वह अपनी इच्छानुसार भूमि छोड़

कर अन्यत्र नहीं जा सकता था। इसके विपरीत यदि उसका स्वामी उसकी भूमि या भूमि के किसी भाग को दूसरे को बेच देता था तो भी वह उस पर काश्त कर सकता था।

स्वामी वर्ग को कृषकों पर कई अन्य अधिकार भी प्राप्त थे। वह उनसे पैसे वसूल कर उसके द्वारा चलाई गई चक्की पर गेहूं पिसने के लिये और अपनी भट्टियों पर डबल रोटी सेखने के लिये बाध्य कर सकते थे। कुछ प्रदेशों में सामन्त वर्ग को अपने कृषकों पर न्यायिक अधिकार भी मिले हुए थे। फ्रांस में इंग्लैण्ड व नार्मडी की अपेक्षा सामन्तों को ऐसे अधिकार अधिक मिले हुए थे।

यद्यपि स्वामी वर्ग को कृषकों पर अनेक अधिकार मिले हुए थे किनतु सिडनी पेन्टर के मत में इनकी भी एक सीमा थी। मध्यकालीन युग में परम्पराओं को काफी हद तक मान्यता मिली हुई थी। क्योंकि उस युग में यह माना जाता था कि अधिकारों के दुरुपयोग का परिणाम अच्छा नहीं होता इसलिये आम तौर पर वे अपने अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करते थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन युग में कृषकों की दशा शोचनीय थी। उनकी स्थिति रोमन साम्राज्य के दासों से कुछ ही बेहतर थी। खेती के पिछड़े तरीकों को प्रयोग में लाने के कारण उसकी उत्पादन क्षमता कम थी।

2.3.2 राजा व सामन्तों के पारस्परिक सम्बन्धः

मध्य युग के आरम्भ में राजा अपने एक सामन्त को उसके जीवन काल के लिये अधिकार देता था। वह इन अधिकारों को कभी भी छीन सकता था। लेकिन दसवीं सदी के अन्त तक यह पद वंशागत हो गया क्योंकि एक सामन्त की मृत्यु पर एक राजा उसके ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकार से वंचित करने में स्वंय को असमर्थ पाता था। ऐसी परिस्थिति में दोनों के सम्बन्ध पारस्परिक समझौतो द्वारा तय होने लगे। ऐसे समझौते तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार किये जाने लगे। फलस्वरूप इनमें एकरूपता का अभाव था।

कभी-कभी अनेक सामन्तों की शक्ति राजा से कहीं अधिक हो जाती थी। वे अवसर मिलते ही राजा को चुनौती दे देते थे। अतएव राजा सामन्तों की शक्ति को बढ़ने से रोकने के लिये प्रयत्न करता रहता था।

इस युग में अनेक देशों में राजा का चुनाव होता था। आम तौर पर इस पद के लिये दो या अधिक प्रत्याशी होते थे। उनमें से एक का चुनाव होता था। उनका चुनाव होने पर वे असंतुष्ट हो जाते थे तथा गृह युद्ध छेड देते थे। इस प्रकार के संघर्षों में विभिन्न प्रदेशों के सामन्त अपने हितों के अनुसार लड़ते थे। उप-सामन्त भी समय समय पर अकेले अथवा मिलकर अपने सामन्त का विरोध करते थे।

राजा व सामन्तों तथा सामन्तों व उप-सामन्तों के बीच परस्पर संघर्ष की स्थिति का शांति व सुव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता था।

इस समय में चर्च भी राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करती थी। अनेक राजाओं अथवा सामन्तो ने पारस्परिक संघर्ष में चर्च की सहायता ली।

2.4 मध्यकालीन युग में विभिन्न देशों में सामन्तवाद :

मध्यकालीन युग में पश्चिमी यूरोप के तीन प्रमुख देश थे, 1- पश्चिमी फ्रांस, 2- पूर्वी फ्रांस जिनमें अधिकांश जर्मन प्रदेश थे, 3- इंग्लैण्ड। उत्तरी यूरोप में स्केण्डनेविका के राज्य थे। इनमें से स्वेडन, नार्वे व डेनमार्क प्रमुख थे। नीवोग्राड, कीव व फ्रोसिया (Frocia) के रूसी प्रदेश स्केन्डनेविया के राज्यों के अधीन थे। इटली भी कई टुकड़ों में विभाजित था। इनमें से सबसे अधिक शक्तिशाली लोम्बार्ड का शासक था जो स्वंय को राजा कहता था। इस युग तक दक्षिण पश्चिमी इटली व सिसली मुसलमानों के प्रभुत्व से स्वतन्त्र हो गये थे। दक्षिण पूर्वी प्रदेशों पर मुसलमानों का राज्य था। इंग्लैण्ड का अपना पृथक अस्तित्व था।

फिशर के अनुसार दसवीं सदी के आरम्भ में जर्मनी, इटली और फ्रांस में ऐसा कोई संगठन नहीं था जो एक राज्य के लिये उपयुक्त माना जा सके। ये देश राष्ट्र कहलाने के लिये किसी भी प्रकार से अधिकारी नहीं थे। इन सब प्रदेशों में सामन्तवादी राजतन्त्र प्रचलित था। क्योंकि विभिन्न प्रदेशों में इस प्रकार के राजतंत्र के विकास की परिस्थितियाँ अलग-अलग थी इसलिये इनमें इसका विकास भी भिन्न-भिन्न तरीके से हुआ।

2.4.1 पश्चिमी फ्रांसः

उस समय पश्चिमी फ्रांस अनेक राज्यों में विभाजित था। इनमें ओरलियंस (Orleans), पेरिस और ड्रेअक्स (Dreyex) के प्रदेशों पर एक शासक का राज्य था इसी शासक के अधीन अंजो (Anjou), मेन (Mane), टूरेन ब्लो (Tourainne Blone), चार्टस (Chartses) और कुछ अन्य काऊंटियों भी थी। फ्लैंडर्स (Flanders) नार्मडी, (Normandy) बर्गेंडी (Burgandy), ग्यूएन (Guieene), गेस्कनी (Gascony), टूलो (Tulon), बारसिलोना (Barcelona) के प्रदेशों में अलग-अलगह शासक थे। ये सब शासक स्वंय को डयूक (Duke) कहते थे तथा एक राजा का चुनाव करते थे जिसमें आर्च-बिशप व बिशप भाग तेले थे। 987 ईस्वी में पेरिस व ओरलियंस के डयूक ह्यूज कापेट को राजा चुना गया। चर्च ने भी उसके चुनाव का समर्थन किया। ह्यूज कापेट ने अपने जीवन काल में ही यह सुनिश्चित कर लिया था कि उसके वंशज ही उसके उत्तराधिकारी बनें। ह्यूज कापेट व उसके उत्तराधिकारियों के समय में सामन्तों की शक्ति को नियंत्रित करने के लिये अनेक असफल प्रयत्न किये। उनकी असफलता का एक प्रमुख कारण यह था कि कुछ सामन्तों की शक्ति उनसे कहीं अधिक थी। ऐसी परिस्थितियों में भी राजा की सत्ता को बने रहने का एक कारण उसको चर्च का समर्थन प्राप्त होना था।

इसके अतिरिक्त कापेटियन राजा अपने अधीन डयूकों व काऊंटों को हानि पहुंचाने में असमर्थ थे। क्योंकि सामन्तवादी प्रथा में एक अधिपति (Overlord) का होना आवश्यक था, इसलिये उन्होंने अपने से कमजोर राजा की सत्ता का अन्त नहीं किया।

बारहवीं सदी में भी राजाओं ने सामन्तों की शक्ति को कुचलने के प्रयास किये। इन प्रयत्नों में उन्होंने कई बार चर्च की सहायता भी ली। फिसर के अनुसार लुई चाल्ठम ने इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु मध्यम वर्ग के सदस्यों को उच्च सरकारी

पद दिये। यद्यपि आने वाली शताब्दियों में नौकरशाही के ढांचे में समयानुकूल कुछ परिवर्तन किये गये किन्तु उसके ढाँचे का स्वरूप नहीं बदला। फिलीप द्वितीय (1179-1223) नार्मंडी, मेन, अंजो, वरमो (Vermon), डोइस (Douis) और टूरेन को जीत कर अन्य ड्यूकों के मुकाबले में शक्तिशाली हो गया। इससे उसकी आमदनी भी चौगुनी हो गई। इस धन की मदद से वह स्थायी सेना रखने लगा। लेकिन फिर भी उसके तथा उसके उत्तराधिकारियों के समय में सामन्त अवसर मिलते ही विद्रोह कर देते थे।

1300 ईस्वी में फ्रांस के शासक ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये स्टेट्स जनरल (States Genera) नामक संस्था का गठन किया। इस संस्था के तीन सदन थे। पादरी, सामन्तों और साधारण वर्ग के प्रतिनिधि अपने अपने पृथक सदनों में विचार विमर्श करते थे। क्योंकि इसके सदस्य जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे इसलिये यह संस्था फ्रांस की राजनीति को सही दिशा दिखाने में निर्णायक भूमिका अदा नहीं कर सकी। यह तो राजा के अधिकारों का ही समर्थन करती रही।

राजा को समर्थन देने के लिये एक और सभा थी जिसे क्यूरिया (Curia) कहते थे। इस सभा में वह अपने अधीनस्थ सामन्तों के साथ विचार विमर्श करता था। आम तौर पर यह सभा एक वर्ष में दो बार क्रिसमस और ईस्टर पर बुलाई जाती थी लेकिन जरूरत पड़ने पर राजा कभी भी इसको बुला सकता था। सरकारी अधिकारियों की स्थायी कमेटियाँ इसके लिये कार्यक्रम तैयार करती थीं। आरम्भ में तो इस सभा के अधिवेशनों में ऐसे काऊंट व पादरी ही भाग लेते थे जो राजा के समर्थक होते थे लेकिन बाद में इसमें बड़े सामन्त भी भाग लेने लगे क्योंकि राजा की शक्ति बढ़ गई थी।

चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक फ्रांस के विभिन्न प्रदेशों में समान कानून लागू नहीं थे। लुई नौवें (1226-1270) ने इस दिशा में पहला कदम उठाया। उसने पार्लियामेन्ट ऑफ पेरिस (Parliament of Paris) को एक न्यायिक निगम का स्तर प्रदान किया। इसके सदस्य कानून के मर्मज्ञ होते थे। क्योंकि वे रोमन साम्राज्य के कानून से प्रभावित थे इसलिये वे राजा के विशेषाधिकारों का समर्थन करते थे। कुछ समय बाद इस निगम की सदस्यता धन के बल पर अथवा राजा द्वारा मनोनीत किये जाने पर प्राप्त की जाने लगी।

तेरहवीं सदी में स्टेट्स जनरल, क्यूरिया और पार्लियामेन्ट ऑफ पेरिस के माध्यम से फ्रांस में राजा की शक्ति व अधिकारों में वृद्धि हुई। इस शताब्दी में फ्रांस के शासकों ने वित्तीय प्रवन्ध का केन्द्रीयकरण करके भी अपनी शक्ति बढ़ाई। उन्होंने प्रत्यक्ष कर लगा कर अपनी आमदनी और बढ़ाई। नौकरशाही ने भी उनका समर्थन किया क्योंकि उनकी नियुक्ति तथा वेतन की अदायगी राजा के हाथ में थी। राजाओं ने अपने कुछ विशेष सलाहकार भी नियुक्त किये। इनमें वह अपने हितों के बारे में विचार विमर्श करता था। राजाओं ने सामन्तों, काऊंटों, व विशपों के अतिरिक्त प्रजा के अन्य वर्गों से भी सम्पर्क स्थापित किया। इस समय तक पश्चिमी यूरोप के नगर अपने शासक को वित्तीय व सैनिक सहायता प्रदान करने में सक्षम हो गये थे, इसलिये राजाओं ने उनके साथ निकट के सम्बन्ध स्थापित किये।

पन्द्रहवी व सोलहवीं शताब्दी में फ्रांस के शासकों ने अपनी आमदनी बढ़ाने के लिये जनता पर अनेक कर लगायो। 1343 ई0 में नमक कर (Gabelle) वसूल किया गया। कुछ समय बाद टैली (Taille) नामक कर लगाया गया। सरकारी मुद्राओं में शुद्ध धातु की मात्रा को बार बार कम किया गया। इन करों की वसूली से भी राजा अपने खर्चे पूरे नहीं कर सकता था क्योंकि इस समय फ्रांस लगातार युद्ध में उलझा रहता था। इससे मध्यम वर्ग तथा किसानों में असंतोष बढ़ता गया। 1358 ई0 में कृषकों के एक भयंकर विद्रोह को दबा दिया गया। चौदहवीं सदी के अन्त तक राजा की शक्ति में इतनी वृद्धि हो गई थी कि वह निरंकुशता की ओर बढ़ने लगा। उनके पास एक स्थायी सेना थी। वह जब चाहे कोई भी कर लगा सकता था। यद्यपि नौकरशाही राजा के अधिकरों को सीमित करना चाहती थी। किन्तु उस समय उसे राजा के आदेशों पर चलना पड़ता था। केवल दो महत्वपूर्ण सामंती परिवारों-ओर्लियंस व बोर्बो-का अस्तित्व बना हुआ था, लेकिन इन दोनों परिवारों के राजा के साथ वैवाहिक सम्बन्ध थे। शेष सामन्तों की आपस में बनती नहीं थी।

एक ऐसे युग में जब कि इंग्लैण्ड राष्ट्रीय राज्य बनने की दिशा में अग्रसर हो रहा था फ्रांस निरंकुशता की ओर कदम बढ़ा रहा था।

2.4.2 पूर्वी फ्रेंकिश राज्य (जर्मनी के प्रदेश):

इसमें लोरेन (Lorrane), फ्रेंकोनिया (Franconia), सेक्सनी (Saxony), बवेरिया (Bavaria) व स्वाबिया (Swabia) के प्रदेश शामिल थे। आरम्भ में पश्चिमी फ्रेंकोनिया तथा लारेन के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में सामन्तवाद का प्रचलन नहीं था। यहाँ के काऊंट केवल अपने अधिपति के एजेंट होते थे। कृषक सामन्तों के चंगुल से मुक्त थे। नौवीं सदी के अन्त में वाईकिंगो (Vikings) और मग्यारों के आक्रमणों के कारण पूर्वी फ्रेंकिश राज्य के केरोलिज्जियन (Caroliggian) वंश की सत्ता कमजोर हो गई। इसके फलस्वरूप फ्रेंकोनिया, स्वाबिया और बवेरिया आदि प्रदेशों में स्थानीय नेताओं ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर "डयूक" की उपाधि धारण कर ली। उन्होंने काऊंटों को अपने अधीन किया तथा गिरजाघरों पर संरक्षण करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। पूर्वी फ्रांस के समान पश्चिम फ्रेंकिश राज्य में एक ही परिवारा के सदस्यों को राजा के पद के लिये चुनाव में भाग लेने का अधिकार नहीं था। अतएव प्रत्येक राजा की मृत्यु पर किसी भी डयूक अथवा उसके परिवार के सदस्य को चुनकर राजा बनाया जा सकता था। इसके फलस्वरूप विभिन्न डयूकों में प्रतिस्पर्धा बढ़ती गई और चुनाव से असंतुष्ट डयूकों ने चुने हुए राजा का विरोध किया। दसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हेनरी व उसके पुत्र ओटो ने मग्यारों के आक्रमणों को असफल कर दिया। ओटो प्रथम (936-73) ने अपनी शक्ति बढ़ाई। उसने डयूकों के विरूद्ध स्थानीय व्यक्तियों का सहयोग लिया तथा चर्च पर भी नियन्त्रण स्थापित किया। लोम्बार्ड (Lombard) को जीत कर वह 962 ई0 में रोम गया जहां उसे पवित्र रोमन सम्राट (Holy Roman Emperor) घोषित किया गया।

यद्यपि ग्यारहवीं सदी के आरम्भ तक जर्मन प्रदेशों में भी सामन्तवाद प्रचलित हो गया था लेकिन कुछ स्थानीय लार्ड्स (Lords) राजा अथवा सामन्त से मिली हुई भूमि के अतिरिक्त अन्य साधनों से भी भूमि पर अधिकार कर लेता था।

बारहवीं सदी के आरम्भ में स्वाबिया के डयूक ने फ्रेंकोनिया के डयूक को राजा चुने जाने पर गृह युद्ध छेड़ दिया जो काफी लम्बे समय तक चला। इसका लाभ अन्य डयूकों, काऊंटो व लार्डों ने उठाया। समस्त जर्मन प्रदेशों में अराजकता फैलती गई तथा पवित्र रोमन साम्राज्य अत्यन्त दुर्बल हो गया। फ्रेडरिक प्रथम (1152-90) व हेनरी षाह्लठम (1190-97) ने बैरनों की शक्ति कम करने के स्थान पर इटली के प्रदेशों को जीतने में अपनी समय व शक्ति लगाई। हेनरी षाह्लठम के समय में पवित्र रोमन साम्राज्य में सिसली व रोम को छोड़ कर शेष इटली के प्रदेश उसके अधीन हो गये। ओटो (1209-1212) का झगड़ा पोप से हो गया। पोप की सहायता से सिसली के शासक फ्रेडरिक द्वितीय (1212-50) को सम्राट चुना गया। उसने सामन्तों की सभी मांगें स्वीकार कर ली। उनका पद वंशागत कर दिया गया, सभी प्रकार के न्यायिक तथा नगरों के प्रशासन के अधिकार भी प्रदान किये। उनकी भूमि पर किले निमार्ण न करने और कर न लगाने का भी उसने वचन दिया। फ्रेडरिक के उत्तराधिकारी अपने अधिकारों को पुनः प्राप्त करने में असफल रहे। सिडनी पेन्टर के मत में तेरहवीं शताब्दी के अन्त में जर्मनी एक संगठित राज्य नहीं था अपितु एक चुने हुए राजा की अस्पष्ट सत्ता के अधीन सामन्तों का एक ढीला-ढाला संगठन था। एक राजा के चुनाव के बाद होने वाले संघर्ष को टालने के लिये सम्राट चार्ल्स चतुर्थ ने 1356 ईस्वी में गोल्डन बुल (Golden Bull) नामक आदेश जारी किया। इसके अनुसार सात सामन्त मेन्ज, ट्रेवेस (Treves) और कोलों (Colough) के आर्च बिशप, राईन (Rhine) का काऊंट, सेक्सनी (Dscpmu) का डयूक ब्रेंडनबर्ग का मार्ग्रव (Margrave) और बोहमिया (Bohemia) का राजा कानूनी तौर पर सम्राट का चुनाव करने के लिये मतदाता माने गये। इनमें से छः को यह अधिकार वंशागत तौर पर दिया गया। केवल बोहमिया को यह अधिकार इसलिये नहीं दिया गया क्योंकि वहां के राजा का चुनाव होता था। इस आदेश में यह संकेत भी दिया गया कि ये सातों मिल कर जर्मनी के मामलों के लिये एक निरीक्षक समिति के रूप में कार्य करेगें। इस आदेश ने सम्राट के चुनाव को विवाद से मुक्त रखने में सहायता दी तथा कुछ जर्मन राज्यों को विघटन होने से रोक दिया। लेकिन इसके बाद भी अनेक जर्मन प्रदेशों का तेजी के साथ विघटन हुआ। चौदहवीं व पन्द्रहवी शताब्दी में पवित्र रोमन साम्राज्य स्वतन्त्र राज्यों का एक जमाव था। जर्मनी में ऐसी छोटी व बड़ी 1600 ईकाईयाँ थी। इनमें आस्ट्रिया, बवेरिया, सेक्सनी, ब्रेंडनबर्ग और राईन की पेलेटीन (Palatine) काऊंटी आदि बड़ी इकाईयों के अतिरिक्त छोटे-छोटे सामन्तों (Knights) के अधीन प्रदेश तथा स्तन्त्र नगर भी थे। यदि सम्राट के पास कोई अधिकार थे तो वे जर्मनी के बाहर के प्रदेशों में थे।

ऐसी परिस्थितियों में पवित्र रोमन साम्राज्य न तो फ्रांस के समान निरंकुश राजतन्त्र की ओर अग्रसर हो रहा था और न ही इंग्लैण्ड के समान प्रजातंत्रिक प्रणाली की दिशा में कदम बढ़ा रहा था। वह तो लगातार विघटन की ओर बढ़ रहा था।

2.4.3 इंग्लैण्डः

नौवीं शताब्दी के अन्त तक ऐंग्लो - सेक्सनों का राज्य समस्त इंग्लैण्ड में फैल गया था। सिडनी पेन्टर के मत में इस समय के ऐग्लो-सेकसन राज्यों की सरकार पश्चिमी यूरोप के किसी अन्य राज्य के मकाबले में कहीं अधिक संगठित थी। यद्यपि

सैद्धान्तिक रूप से राजा का चुनाव होता था लेकिन आम तौर पर एल्फ्रेड महान के वंशजों में से ही राजा का चुनाव किया जाता था। शारीरिक दृष्टि से योग्य किसी भी व्यक्ति को राजा सैनिक सेवा के लिये बुला सकता था। स्थानीय अदालतों द्वारा अपराधियों से वसूल किये गये जुर्माने का दो-तिहाई और गंभीर किस्म के अपराधों के दोषी व्यक्तियों से वसूल किया गया सारा जुर्माना उसको मिलता था। प्रत्येक काऊँटी अथवा शायर (Shere) में वह अपने प्रतिनिधि नियुक्त करता था जो उसके आदेशों का पालन करते थे। वह बिशप तथा एबोट (Abbot) की नियुक्ति भी करता था।

एंग्लो-सेक्सन राज्य में एक सभा भी थी जिसे विटानगेमोट (Witangemot) कहते थे। इसके सदस्य राज्य के प्रभावशाली व्यक्ति, अधिकारी, भूमिपति व पादरी होते थे। यह सभा ही राजा के चुनाव की प्रक्रिया को सम्पन्न करती थी। राजा से यह आशा की जाती थी कि वह नये कानून बनाने तथा अन्य महत्वपूर्ण मामलों पर उसकी राय ले। राजा व विटानगेमोट महत्वपूर्ण स्थानीय अधिकारियों (earldorman) का चुनाव करते थे। न्याय का प्रबन्ध स्थानीय अदालतें करती थीं जिनके अपने अपने नियम थे। दसवीं सदी तक राजा ने कुछ अपराधों का दंण्ड देने की जिम्मेवारी अपने उपर ले ली थी।

नार्मन ऐन्जिवन (Norman-Angivan) काल (1066-1153): संसदीय संस्थाओं का बीजारोपण-

इंगलैण्ड में राजनैतिक संगठन का स्वरूप ग्यारहवीं शताब्दी में नार्मन विजय के बाद अधिक स्पष्ट हो जाता है। 1066 ई0 में नोर्मंडी के ड्यूक विलियम प्रथम ने इंग्लैण्ड पर आक्रमण कर वहाँ के शासक हेराल्ड को मार दिया और राज गद्दी हथिया ली। विजेता विलियम प्रथम ने ऐसी प्रशासनिक संस्थाओं का विकास किया जो स्वशासित होते हुए भी राजा के नियंत्रण में थी। विलियम के आक्रमण से पूर्व इंग्लैण्ड में स्वशासित नगर थे जिन्हें "बरो" (Burrows) कहा जाता था। इनकी अपनी निर्वाचित नगर सभा होती थी जो नगर का प्रशासन करती थी और एक सीमा तक सुरक्षा और न्याय व्यवस्था भी देखती थी। विलियम ने इन परिषदों को समाप्त नहीं किया बल्कि दो और संस्थाओं की स्थापना की

1- मैगनम कन्सीलियम (Magnum Concilium) अथवा वृहद् सभा

2- क्यूरिया रेजिस (Curea Regis) या शाही परिषद्

दोनों संस्थाएं नार्मन-ऐन्जिवल काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन है। मैगनम कन्सिलियम में नीति निर्धारण और आर्थिक विषयों पर चर्चा होती थी। क्यूरिया रेजिस का कार्य सम्भवतः उच्चतम न्यायालय के रूप मे काम करना तथा राजा को दिन प्रतिदिन के प्रशासन में सहायता देना था। इन दोनों संस्थाओं से आगे चलकर क्रमशः संसद और प्रिवी कौंसिल (Privy Council)का विकास हुआ।

ट्यूडर काल के पूर्व संसद का स्वरूपः मैग्नाकार्टाः पार्लियामेन्ट

विलियम के प्रपौत्र हेनरी द्वितीय (1154-89) को इंगलैण्ड के इतिहास में महान् विधिवेत्ता कहा जाता है। उसके समय में क्यूरिया रेजिस के लिए प्रशासन और न्याय

सम्बन्धित दोनों कार्य को साथ-साथ करना कठिन हो गया। इसलिए इसके दो भाग किये गये-राज परिषद, जो आगे चलकर "प्रिवी-कौन्सिल" कहलायी, प्रशासन सम्बन्धी कार्यों के लिए, और "एक्सचेकर" (Exchequer) वितीय मामलों के लिए। हेनरी द्वितीय के समय वृहद् सभा के अधिवेशन नियमित रूप से होने लगे। इसमें छोटे-छोटे सामन्तों और भूपतियों को भी शामिल कर लिया गया। इसका यह अर्थ नहीं है कि अधिक लोगों को शमिल करने से शासक के मन में जनतांत्रिक भावना का उदय हो रहा था बल्कि इसका उद्देश्य अत्यधिक धन बटोरना था। वह सभी भूपतियों पर कर लगाना चाहता था। इसलिए अधिकाधिक लोगों को वृहद् सभा में बुलाना लाभदायक था।

इंग्लैण्ड के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना राजा जॉन (1199-1216) के समय हुई। वह एक अत्याचारी शासक था। अपने क्रूर कार्यों तथा दुष्टतापूर्ण व्यवहार के कारण वह अपने समर्थकों का विश्वास खो बैठा। जनता ने राजा का विरोध करना प्रारम्भ किया। शासन सुधारों का मांग पत्र तैयार करने हेतु स्टीफन लोग्टन (Stephen Loughton) के नेतृत्व में 1213 ई0 में सेन्ट अल्वास (Saint Alvas) में एक सभा हुई। इस सभा ने नागरिक स्वतन्त्रता का अधिकार पत्र तैयार किया। इसे 'मैग्ना कार्टा' (Magna charta) अथवा "दि ग्रेट चार्टर" (महाधिकार पत्र) के नाम से पुकारा गया। यह महाधिकार पत्र राजा जॉन के समक्ष स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किया गया। अमीरों और जनता द्वारा अत्यधिक दबाव डालने पर राजा जॉन ने विवश होकर जून 15, 1215 ई. को इसे स्वीकार कर लिया। इस महाधिकार पत्र द्वारा, जिसमें कुल 63 धाराएं थी, राजा पर अंकुश लगाया गया। इसने यह सिद्ध कर दिया कि सम्राट के अधिकरों के साथ-साथ जनता के भी कुछ अधिकार होते हैं। इसकी स्वीकृति से इस सिद्धान्त को मान्यता मिली कि बिना शासितों की अनुमति के शासक को कर लगाने का अधिकार नहीं है। यह सिद्धान्त आज भी इंग्लैण्ड की संसदीय व्यवस्था का मूलभूत तत्व है। यद्यपि उस समय अपनी सम्मति देने का अधिकार केवल सामन्तों और भूपतियों को ही प्राप्त था परन्तु आगे के युग में यह जनता का मौलिक अधिकार बन गया। इसलिए बहुत से इतिहासकार इस अधिकार पत्र की घटना को इंग्लैण्ड में जनतन्त्र का प्रारम्भ मानते है। थॉम्पसन और जानसन ने उसके महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा कि "मैग्नाकार्टा "वस्तुतः ब्रिटिश संविधान का आधार स्तम्भ है क्योंकि इसने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि राज भी विधि के उपर नहीं अपितु विधि के अधीन है।"

जॉन की मृत्यु के बाद हेनरी तृतीय (1216-1272) गद्दी पर बैठा। वह बड़ा अपव्ययी था। हैनरी तृतीय ने "वृहद्-सभा" की अनुमति के बिना कर लगाने का प्रयत्न किया। इसके विरोध में जनता ने अर्ल साइमन (Earl Simon) के नेतृतव में खुली बगावत कर दी। हेनरी को बन्दी बना लिया गया तथा अर्ल साइमन सम्राट बना। क्योंकि धन की कमी पूर्ति के लिए कर लगाना अत्यावश्यक था और इसकी अनुमति उसे वृहद् सभी ही दे सकती थी। अतः 1265 में वृहद् सभा का अधिवेशन बुलाया गया। किन्तु साइमन को अपनी उदारनीति कार्यान्वित करने में सफलता नहीं मिली और पुनः संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इस संघर्ष में साइमन मारा गया और हेनरी तृतीय पुनः गद्दी पर बैठा। पार्लियामेन्ट के इतिहास में साइमन का नाम विशेष

आदर से लिया जाता है। सबसे हले उसने जनता के प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त स्वीकार किया और उसे कार्य रूप में लाया।

हेनरी तृतीय की मृत्यु के बाद उसका पुत्र एडवर्ड प्रथम (1272-1307) गद्दी पर बैठा। यह उदार शासक था। अतः उसने साइमन की नीति का अनुकरण किया। इसके शासन काल में पार्लियामेन्ट दो भागों में बंट गयी, क्योंकि बेरन्स और पादरियों ने अपने आपको अन्य प्रतिनिधियों से अलग कर लिया। इस प्रकार अलग हुआ सदन जो आगे चल कर "हाउस ऑफ लार्डस" (House of Lords) कहलाया, और काउन्टी (जिला) तथा नगर प्रतिनिधियों का शेष सदन "हाउस ऑफ कामन्स" (House of Commons) हो गया। इसे इतिहास में "मॉडल पार्लियामेन्ट" (Model Parliament) कहते हैं। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का विचार है कि मॉडल पार्लियामेन्ट का दो सदनों में बंटना सांविधानिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है क्योंकि इसके पश्चात् ब्रिटेन से प्रभावित होकर सभी लोकतन्त्रीय देशों ने अपने यहाँ द्विसदनात्मक व्यवस्था को अपनाया। 1297 ई0 में एक आज्ञा द्वारा यह व्यवस्था की गई कि सम्राट संसद की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई धन खर्च नहीं कर सकता।

लंकास्ट्रियन (Lancastrian) युग (1399-1461) पार्लियामेन्ट के उत्कर्ष का काल है। यद्यपि यह करीब 62 वर्षों का छोटा युग है फिर भी यह इंग्लैण्ड के वैधानिक इतिहास में बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इस युग में तीन राजाओं-चौथा, पांचवा और छठा हेनरी-ने राज्य किया। किन्तु ये सभी शासक पार्लियामेन्ट के हाथ में कठपुतली जैसे थे और वे पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायी बन गये थे। अतः लंकास्टर युग के शासन को वैधानिक या पार्लियामेन्टरी शासन कहते है।

लंकास्टर युग में सांविधानिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ कि हेनरी चतुर्थ ने "क्यूरिया रेजिस" में अपने कुछ परामर्शदाता चुनकर इन परामर्शदाताओं की संस्था को "प्रिवी कौंसिल" (Privy Council) का नाम दिया। इस प्रकार प्रिवी कौन्सिल का जन्म हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक "कामन्स सभा" पर्याप्त शक्तिशाली हो गयी। जैसे जैसे नगर समृद्ध होते गये "कामन्स सभा" की शक्ति बढ़ती गयी। राजा चूंकि धन प्राप्ति के लिए नगरों के उत्पादन, कृषि और निर्यात की आय पर कर लगाता था, इसलिए वित्तीय विषयों में इस सभा से परामर्श अधिक आवश्यक होता गया। इसके अतिरिक्त कानून बनाने में भी कामन्स सभा का महत्व बढ़ा। लगभग पूरी पन्द्रहवीं शताब्दी में सामन्तों के युद्ध होते रहे। अतः सामन्त अधिवेशनों में उपस्थित नहीं हो पाये थे। फलस्वरूप राजा कामन्स सभा पर निर्भर होता गया। बड़ी संख्या में सामन्तों के युद्धों में मारे जाने से लार्डस सभा भी उतनी प्रभावी नहीं रही जितनी पहले थी। इसलिए अब दोनों सभाओं की मर्यादा लगभग समान हो गयी। फिर भी "कामन्स-सभा" का वित्तीय मामलों में और लार्डस सभा का न्यायिक विषयों में विशेष महत्व था। निष्कर्षतः इतना कहा जा सकता है कि इस युग में इंग्लैण्ड में संसदीय संस्थाओं का प्रादुर्भाव हो चुका था।

यार्क (York) वंश (1461-85) के शासन काल में पार्लियामेन्ट की शक्ति घटने लगी और उसकी उपेक्षा की जाने लगी। पार्लियामेन्ट की बिना मन्जूरी के कर वसूल किये जाने लगे। शासक अपने मंत्रियों को पार्लियामेन्ट के प्रति जिम्मेदार होने से

भी रोकने लगे। इस तरह यार्क वंशीय राजा पार्लियामेंन्ट के अधिकारों पर चोट करने लगे।

टयूडर (Tudor) कालः परम्पराओं से हटकर संसद की प्रतिष्ठा में वृद्धि

टयूडर काल (1485-1603) के शासक निरंकुश थे। यद्यपि इस युग के निरंकुश शक्तिशाली शासकों जैसे हेनरी सप्तम्, हेनरी अष्टम् तथा एलिजाबेथ प्रथम ने बहुत सी परम्पराओं को तोड़कर मनमाने कार्य किये परन्तु उनके परिणाम संसदीय विकास के लिए हितकर सिद्ध हुए। निरंकुश ट्यूडर शासन में संसद की शक्ति बढ़ने का सबसे बड़ा कारण ट्यूडर शासकों की सक्रियता और परम्परा से हट कर शासन करना था।

उदाहरण के लिए हेनरी सप्तम के समय परम्परा को तोड़ कर एंग्लिकन (Anglican) चर्च की स्थापना हुई। धर्म के क्षेत्र में बह बड़ी बात थी। पोप के साथ सम्बन्ध तोड़ना और नये धर्म की स्थापना करना बड़े साहस का कार्य था। इससे क्षुब्ध होकर यूरोपीय देश इंग्लैण्ड पर आक्रमण कर सकते थे। ऐसी परिस्थिति में राजा के लिए संसद का सहयोग पाना अनिवार्य था और उसके उस विचार से संसद की प्रतिष्ठा बढ़ी। इसी प्रकार महारानी एलिजाबेथ ने भी संसद में ऐसे कार्य कराये जो संसद के क्षेत्र में नहीं थे। उदाहरणार्थ--इस समय सामन्त अपनी भूमि से कृषकों को हटा कर भेड़ पालना चाहते थे क्योंकि इस धन्धे से अधिक लाभ था। एलिजाबेथ ने पृथक-पृथक प्रदेश के सामन्तों को यह अधिकार देने के लिए संसद से "एन्कलोजर ऐकट" (Enclosure Act) पारित कराये। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ट्यूडर शासकों ने संसद का प्रयोग अपनी नीतियों के समर्थन के लिए नये कार्य क्षेत्रों में भी किया। इस प्रकार ट्यूडर शासकों ने अपने हित साधन के लिए अनजाने में ही संसद को शक्तिशाली बना दिया।

3.4.4 स्केन्डनेवियाः नवीं व दसवीं शताब्दी तक स्केन्डनेविया के प्रदेशों में संगठित राजनीतिक व्यवस्था का सूत्रपात नहीं हुआ था। यहाँ के विभिन्न प्रदेशों के स्वामी आपस में लड़ते रहते थे। दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इन प्रदेशों में तीन राज्यों-नार्वे, स्वेडन और डेनमार्क-का उदय हुआ। बारहवीं सदी के अन्त में डेनमार्क के राजा ने सैन्य सेवा के बदल में बहादुर व्यक्तियों को भूमि का अनुदान देने की प्रथा को अपनाया। यद्यपि इन प्रदेशों के सामन्त को भूमि पर अधिकार दिये गये थे किन्तु वे न्याय नहीं कर सकते थे। इन तीनों देशों के सामन्तों ने अपनी अपनी परिषदें बनाईं तथा उन्होंने राजा की शक्ति को कम करने का प्रयत्न किया। 1282 ईस्वी में डेनमार्क के राजा ने सामन्तों की परिषद का अधिवेशन प्रत्येक साल बुलाने का वचन दिया। चौदहवीं सदी तक इन तीनों राज्यों में सामन्तों की शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि वहाँ के राजा उनकी सहमति के बिना कुछ नहीं कर सकते थे।

इन तीनों देशों में सामन्तवाद का स्वरूप फ्रांस से कुछ भिन्न था। सिडनी पेन्टर के मत में यद्यपि उन्हें राजा को सैन्य सेवा प्रदान करनी पड़ती थी और उन्होंने

बौरन (Baron), नाइट और स्कायर (Squire) की उपाधियाँ धारण की थीं किन्तु मूल रूप से इन प्रदेशों की व्यवस्था गैर सामन्तवादी थी। राजा से मिली हुई भूमि पर वे शासन करने के अधिकारी नहीं यदि उन्हें सरकारी अधिकारी न बनाया गया हो।

तेरहवी शताब्दी से नार्वे का विशाल साम्राज्य छिन्न भिन्न होने लगा। स्वेडन व डेनमार्क भी दुर्बल हो गये। चौदहवीं शताब्दी के अन्त में तीनों राज्य डेनमार्क के राजा के अधीन हो गये। स्वेडन ने उसके शासन का निरन्तर विरोध किया। 1523 ईस्वी में स्वेडन स्वतन्त्र हो गया। लेकिन इस समय तक वहाँ के कुछ भागों में केन्टनों (Cantons) का राज्य था।

इस प्रकार मध्यकालीन युग में स्केन्डनेवियन प्रदेशों में न तो शासक अपनी सत्ता को सुदृढ़ कर सके और न ही वहाँ पर सामन्त अपनी शक्ति में वृद्धि कर सके। इन प्रदेशों में राष्ट्रीय राज्यों का उदय सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आरम्भ हुआ।

2.4.5 स्पेनः

मध्यकालीन युग के आरम्भ तक स्पेन के अधिकांश भागों पर मुसलमानों का कब्जा था। 1212 ईस्वी में स्पेन के प्रदेशों की संयुक्त सेना ने मुसलमानों को हराया। 1252 ईस्वी तक ग्रेनेडा (grenada) को छोड़ कर शेष स्पेन में मुस्लिम साम्राज्य का अन्त हो गया। स्पेन के विभिन्न प्रदेशों में सामन्तवाद का रूप अलग-अलग था। बारसीलोना (Barcelona) की काऊंटी ने दक्षिणी फ्रांस की राजनीति में स्वयं को उलझा रखा था। अतएव वहाँ पर सामन्तवाद का स्वरूप फ्रांस के समान था। अरागान (Aragon) में सभी सामन्त व उपसामन्त प्रत्यक्ष रूप से शासक से सम्बद्ध थे। केस्टील (Castelle) लियो ;Leon) व पुर्तगाल में सामन्तवादी प्रथा प्रचलित नहीं थी।

बारहवीं सदी में अनेक नगरों ने अपने शासकों से चार्टर जारी कराके अधिकार प्राप्त किया। नगरों के प्रतिनिधियों ने सामन्तों की कौंसिल से मिल कर एक सभा (Cortes) का गठन किया। शीघ्र ही नगरों की सभाओं ने कानून बनाने और कर लगाने के विस्तृत अधिकार प्राप्त कर लिये।

1469 ई0 में अरागान और कास्तील वे राज्यों का एकीकरण हुआ। दोनों संयुक्त सेनाओं ने मुसलमानों को ग्रेनेडा से खदेड दिया। इसी के साथ स्पेन में एकता स्थापित हो गई। सोलहवीं शताब्दी में स्पेन अपने गौरव की पराकाष्ठा पर पहुंच गया। उसके अधिकांश प्रदेशों पर राजा का प्रभुत्व था। कुछ नगरों में कम्यून (Commune) शासन करते थे

2.4.6 इटली

नौवीं सदी के अन्त में इटली कई भागों में विभक्त था। रोम में पोप का राज्य था। लोम्बार्ड में राजतन्त्र था तथा कुछ स्वतन्त्र नगर राज्य थे। जर्मनी के राजाओं ने इटली में अपना प्रभाव स्थापित किया। पवित्र रोमन सम्राट हेनरी षष्टम के समय में सिसली व रोम को छोड़ कर शेष इटली उसके अधीन थे। लेकिन लोम्बार्ड व अन्य प्रदेश लगातार जर्मन सम्राटों का विरोध करते रहे। धर्म युद्धों (Crusades) के समय में इटली के अनेक बन्दरगाहों का व्यापार बढ़ा। इन नगरों में कम्यूनों की स्थापना हुई। इन्होंने अपने शासकों, बिशपों व सामन्तों का विरोध किया। उत्तरी

इटली में पवित्र रोमन साम्राज्य के आधिपत्य को समाप्त करने के लिये भी संघर्ष हुआ। अन्त में अनेक नगर स्वतन्त्र हो गये तथा उत्तर में छोटे-छोटे राज्य स्थापित हुए। इस प्रकार मध्यकालीन युग में इटली में न तो पूर्ण एकता स्थापित हो सकी और न ही वहां पर व सामन्तवादी राजतन्त्र सुदृढ़ हो सका।

2.4.7 रूस

नौवी सदी में स्वेडन के वाईकिंगों ने रूस के प्रदेशों पर आक्रमण किये। कुछ ही समय में उन्होंने नोवोग्राड (Novograd), कीव (Kiev), फ्रेसिया पर अधिकार कर लिया। रूस के दक्षिणी प्रदेशों पर मुस्लिमों का अधिकार बना रहा।

अपने अधीन प्रदेशों का शासन स्थानीय रूसी मुखिया करते थे जो स्वंय को प्रिन्स कहते थे। इनमें आपस में संघर्ष होता रहता था। 1380 ईस्वी में रूस के अनेक प्रिंसो ने मिल कर मंगोलों को हराया। इनका नेता मास्को का प्रिंस था। धीरे-धीरे उसने अनेक प्रदेशों को जीत लिया। 1472 ईस्वी में उसने जार (Czar) की उपाधि धारण की। इस समय में रूस का सम्पर्क यूरोप के साथ स्थापित हुआ। अतएव मध्य युग में रूस यूरोपीय राजनीति से पृथक रहा।

2.5 सामन्तवाद के पराभाव के कारणः

सामन्तवाद का उदय मध्य युग के आरम्भ में हुआ। इसका पतन भी इसी युग के अन्त में शुरू हुआ। यह पतन प्रशासन की एक विधा के रूप में ही हुआ। सामाजिक क्षेत्र में यह प्रथा एक लम्बे समय तक बनी रही। इसके पतन के निम्नांकित कारण हैं:

(1) असमानता पर आधारितः

यह प्रथा असमानता पर आधारित थी। मार्क ब्लाच के अनुसार इसमें एक योद्धा वर्ग ने किसानों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया तथा उनका शोषण किया।

(2) सत्ता का विभाजनः

इस प्रणाली में सत्ता का विभाजन किया जाता था। राजा व उसके सामन्तों में निरन्तर सत्ता के लिये संघर्ष होता रहता था जिससे अराजकता फैलती थी।

इनके अतिरिक्त तेरहवीं सदी से पश्चिमी यूरोप व कुछ अन्य देशों में ऐसी नवीन परिस्थितियाँ पैदा हुई जिन्होंने इसके पतन में अपना सहयोग दिया।

(3) नये हथियारों एवं बारूद का चलनः

नये शस्त्रास्त्रों के प्रचलन, सामरिक पद्धति में परिवर्तन और विशेषतः बन्दूक एवं बारूद के बढ़ते प्रयोग के कारण भी सामन्तवाद का शीघ्रता से पतन हुआ। अभी तक सामन्ती किलों पर तीरों की मार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु, अब बन्दूकों एवं तोपों की मार से किलों की दीवारें सामन्तों की रक्षा करने में असमर्थ थीं। राजा अब बारूद एवं गोलाबारी द्वारा सामन्तों के किलों पर आसानी से कब्जा कर लेते थे।

(4) कृषि उत्पादन में वृद्धिः

कृषि क्षेत्र में तकनीक में परिवर्तन से कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई। कृषि क्षेत्र में दो खेत प्रणाली के स्थान पर तीन खेत प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि यूरोप

में आठवीं शताब्दी में भी इस प्रकार की प्रणाली के पाए जाने के प्रमाण मिलते हैं किन्तु इस प्रणाली के प्रयोग का विस्तार ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास देखने को मिलता है। तीन खेत प्रणाली के अन्तर्गत कृषि योग्य भूमि को तीन बराबर टुकड़ों में बांट दिया जाता था। राई या गेहूं सर्दी में पहले खेत में उगाया जाता था तथा मटर, ओट्स (Oats) आदि बसन्त ऋतु में दूसरे खेत में तथा तीसरा खेत खाली छोड़ दिया जाता था। इस प्रणाली में जो खेत पहले वर्ष खाली छोड़ दिया जाता था। उस पर अगले वर्ष खेती की जाती थी तथा दूसरे को खाली छोड़ दिया जाता था। इस तीन खेत प्रणाली के विस्तार से कृषि उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। अतः अधिक लोगों का भरण पोषण सम्भव हुआ। परिणामस्वरूप 1000 ई0 तथा 1300 ई0 के मध्य यूरोप की जनसंख्या दुगनी हो गई। शहरों का विकास और जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि हुई। शहरों के विकास से निर्मित वस्तुओं के उत्पादन में तथा आर्थिक विशिष्टीकरण में वृद्धि हुई। अब कृषक की सामन्त पर निर्भरता कम हो गयी जिससे सामन्तवादी प्रणाली का पतन शुरू हुआ।

(5) धर्म युद्धों का प्रभावः

सामन्तवाद के पतन के लिए धर्मयुद्ध (1095-1291) भी जिम्मेदार थे। धर्मयुद्धों में भाग लेने वाले बहुत से सामन्तों ने या तो अपनी जमीन बेच दी थी या उसे गिरवी रख दिया था। इस तरह सामन्ती शक्ति तथा प्रभाव राजाओं अथवा व्यापारियों के हाथ में चले गये। अनेक सामन्त इन युद्धों में मारे गये और उनकी भूमि राजाओं द्वारा जब्त कर ली गई।

(6) व्यापारिक वर्ग का अभ्युदय

धर्म युद्धों के परिणामस्वरूप यूरोप के वाणिज्य व्यापार में वृद्धि हुई। धर्म युद्धों के समय यूरोप के लोगों को नये नये देशों का ज्ञान हुआ और वे अन्य देशों से परिचित हुए। पूर्व की भोग विलास वस्तुओं की मांग यूरोप में होने लगी। फलतः व्यापारिक वर्ग का उदय हुआ। व्यापारियों ने खूब धन कमाया। कितने ही व्यापारी सामन्तों से अधिक सम्पन्न थे। इस प्रकार इस वर्ग के पास धन या बुद्धि थी, परन्तु समाज तथा प्रशासन में महत्व नहीं था। सामन्तों की तुलना में इनको निम्न कोटि का समझा जाता था। अतः वे सामन्तों से ईर्ष्या करने लगे और उनके दमन के लिए राजाओं को आर्थिक सहयोग देने लगे।

व्यापार के विकास में 1200 ई0 से 1400 ई0 के मध्य यूरोप में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले व्यापारिक मेलों ने भी उल्लेखनीय योगदान दिया। ये मेले यूरोप के महत्वपूर्ण शहरों में आयोजित होते थे तथा कई सप्ताह तक चलते थे। उत्तरी यूरोप के व्यापारी अपनी वस्तुएं अनाज, मछली, ऊन, कपड़ा, लकड़ी, लोहा, नमक आदि का विनिमय दक्षिणी यूरोप के व्यापारियों की वस्तुओं मसाले, सिल्क शराब, फल, सोना, चांदी आदि से करते थे। पन्द्रहवीं शताब्दी में इन मेलों का स्थान व्यापारिक शहरों ने ले लिया, जहाँ वर्ष भर व्यापार चलता था। व्यापार के विकास ने निर्मित वस्तुओं की अधिक मांग को जन्म दिया। सोलहवीं शताब्दी में हस्तकला उद्योग, जिनमें शिल्पकार अपने औजारों तथा कच्चे माल से एक स्वतन्त्र लघु उद्योग द्वारा उत्पादन करते थे, का स्थान अपेक्षाकृत बड़े उद्योगों ने ले लिया। धीरे-धीरे

पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली का जन्म हुआ जिससे सामन्तवादी आर्थिक प्रणाली का पतन हुआ।

व्यापार वाणिज्य तथा उद्योग धन्धों के विकास के परिणामस्वरूप यूरोप में अनेक नये-नये कस्बों तथा नगरों का विकास हुआ। कस्बों और नगरों के व्यवसायियों को सस्ते मजदूरों की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने गांवों के किसानों तथा कृषिदासों को प्रलोभन देकर नगरों में आकर बसने के लिए प्रेरित किया। सामन्तों को यह पसन्द नही आया। अतः दोनों वर्गों में संघर्ष शुरू हो गया। राजा भी सामन्तों से छुटकारा चाहते थे। नवोदित वर्ग भी व्यापार के हितों के लिए राजा का समर्थन एवं संरक्षण चाहता था। व्यापारिक वर्ग ने राजाओं को सहयोग देकर सामन्तों की शक्ति को कम करने में उल्लेखनीय भूमिका निभायी।

(7) राजा की शक्ति में वृद्धिः

स्थायी सेना हो जाने से राजा की शक्ति में वृद्धि हुई। विभिन्न वर्गों के सहयोग ने भी राजा की शक्ति बढ़ाई। मुद्रा के प्रचलन से राजा को अपने अधिकार कायम करने में एक और सहूलियत प्रदान की। वह प्रत्यक्ष रूप से अपने राज्य में कर लगाने लगा। राजा ने एक स्वतन्त्र नौकरशाही का सृजन करके भी प्रशासनिक क्षेत्र में सामन्तों के प्रभाव से मुक्ति पायी। इन विभिन्न कारकों ने राजा की शक्ति को निरकुंश बनाने एवं सामन्तों को दबाने में भूमिका अदा की।

(8) किसानों का विद्रोहः

सामन्त प्रथा किसानों के शोषण पर आधारित थी। उन पर वे घोर अत्याचार करते थे। सामन्ती उत्पीड़न से क्षुब्ध होकर किसानों ने सामन्त प्रथा का विरोध किया। किसानों के संगठित विद्रोह को दबाना सामन्तों के लिए कठिन हो गया। इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना घटी जिससे किसानों के विद्रोह ने व्यापक रूप धारण कर लिया। 1348 ई0 में एक भीषण महामारी ने, जिसे "काली मृत्यु" कहा जाता है, यूरोप की लगभग आधी जनसंख्या का सफाया कर दिया। खेतो में काम करने वाले किसानों एवं मजदूरों की भारी कमी हो गयी। इंग्लैण्ड में कृषिदासों ने उसे अपने काम के लिए उचित पारिश्रमिक जैसे अधिकार की मांग की। किन्तु इंग्लैण्ड की सरकार ने सामन्तों के प्रभाव में आकर किसानों को दबा दिया। 1381 ई0 में वाट टाइलर (Watt Tytle) के नेतृत्व में इंग्लैण्ड के हजारों किसानों ने विद्रोह किया। किसानों के इस विद्रोह में शिल्पियों, कारीगरों तथा निम्न श्रेणियों के पादरियों ने भी भाग लिया। लगभग इसी समय फ्रांसीसी किसानों में एक और भी व्यापक विद्रोह हुआ (जैकरी (Jackary) वर्ग का विद्रोह)। इन तथा अन्य किसान विद्रोह को कठोरतापूर्वक दबा दिया गया। परन्तु किसानों का स्वातंत्रय प्रेम नहीं मरा। शहरों के उदय के कारण अब किसानों का सामन्तों पर निर्भर रहना आवश्यक न रह गया, क्योंकि वे शहरों में रोजी-रोटी कमा सकते थे। इस तरह कृषक विद्रोहो ने सामन्तवाद की नीव हिला दी।

(9) सामन्तों के पारस्परिक संघर्ष

सामन्तों के पारस्परिक संघर्ष भी सामन्तवाद के पतन का एक बड़ा कारण था सभी सामन्त अपनी अलग-अलग सेना रखते थे। इन सेनाओं ने एक ओर तो बर्बर

आक्रमणकारियों से अपने देश की रक्षा की, दूसरी ओर आपस म लड़कर सामन्ती शक्ति को क्षीण किया। फ्रांस और इंग्लैण्ड में इस तरह के संघर्ष उल्लेखनीय रहे।

(10) परिवर्तित परिस्थितियाँ–

कई सामन्त, सामन्त तंत्र के शत्रु बन बये ? उनमें से कुछ ने यह देखा कि वेतन के लिए श्रम करने वाले स्वतन्त्र किसान बाध्य होकर काम करने वाले कृषि दासों की अपेक्षा फसल पैदा करते है। बहुत से भूमिपति, जो धन के लिए लालायित थे, इस बात के इच्छुक थे कि उनके कृषि दास या तो धन देकर अपनी स्वतन्त्रता खरीद ले या लगान चाकरी के रूप में न देकर पैसे के रूप में दें। कुछ भूमिपति ऐसे भी थे जो अपनी जागीर के नीरस जीवन के बजाय शहर में या राज दरबार में रहना पसन्द करते थे।

2.6 राष्ट्रीय राज्यों के उदय के कारणः

सामन्तवाद के पराभाव के समय में पश्चिमी यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों का उदय हुआ। मध्य युग के अन्त में व्यापार व वाणिज्य की उन्नति के साथ नगरों का पुनः विकास हुआ। इनके निवासियों ने राजा की शक्ति बढ़ाने में रुचि ली। क्योंकि यहाँ के मध्यम वर्ग का हित एक सबल राजतन्त्र से जुड़ा हुआ था। इस समय में चर्च का विरोध भी कम हो गया था। अनेक अवसरों पर चर्च ने सामंतीय अराजकता के विरूद्ध राजतन्त्र का समर्थन किया। धर्म सुधार आन्दोलन ने भी राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया। मठो के टूटने से राजा की आय तथा शक्ति में वृद्धि हुई। धर्म का महत्व कम होने से भाषा, परम्परा और जातीय एकता का महत्व बढ़ा। नवीन भौगेलिक खोजो ने भी प्रत्येक देश के गौरव को बढ़ाकर राष्ट्रीय भावना को सबल बनाया। रोमन कानून की विधाओं में आस्था रखने वाले विद्वानों ने राजा के प्रति भक्ति की भावना को बढ़ाया।

इन सब परिस्थितियों ने मिलकर राष्ट्रीय राज्यों के निर्माण में अपना योगदान दिया। ऐसे राज्यों में इंग्लैण्ड सबसे प्रथम था। लेकिन इसके साथ साथ यहां पर संसदीय प्रणाली का भी उदय व विकास हुआ। फ्रांस में राजा को ही शक्ति व अधिकार सौंपे गये। मुसलमानों को ग्रेनेडा से खदेडने के बाद स्पेन राष्ट्रीय राज्य बना। रूस में पीटर महान (1682-1725 ई0) ने इस दिशा में कदम उठाये।

2.7 निषकर्ष मध्य युग के राजनीतिक संगठन और विचारधारा के प्रमुख लक्षणः

मध्यकालीन यूरोप में अधिकांश प्रदेशों में शासन का स्वरूप राजतन्त्र था। माईकेल गिलमोर (Micheal Gylmore) के मत में उस समय के राजतन्त्र की परम्परा जर्मनिक विचारधारा से ली गई थी और वह क्लासिकल (Classical) राजनीतिक सिद्धान्तों के अनुरूप पनपी थी। इटली के कुछ प्रदेशों, स्वेडन के केन्टनों और पवित्र रोमन साम्राज्य के नगरों को छोड कर शेष यूरोप में राजतन्त्र स्थापित था। पश्चिमी यूरोप के देशों में राजा का पद वंशागत था लेकिन पूर्वी और उत्तरी यूरोप के देशों में उसका चुनाव होता था। माइरन गिलमोर ने लिखा है कि मध्यकालीन युग के अन्त में यूरोप की प्रशासनिक व्यवस्था द्वैधता (Dualism) पर आधारित थी। एक ओर

राजा अपने अधिकारों, जिन्हें कि पारिभाषित किया जाता था, का प्रयोग करता था तो दूसरी ओर उसे अपनी प्रजा की भलाई और अधिकारों के प्रति सजग रहना पड़ता था। ऐसी परिस्थिति में राजा और प्रजा के बीच संघर्ष होना स्वाभाविक था। कभी राजा की शक्ति बढ़ जाती थी तो कभी प्रजा उसकी शक्ति को सीमित करने में सफल हो जाती थी। सामान्य रूप से इस प्रकार का संघर्ष राजा व उसके सामन्तों के पारस्परिक सम्बन्धों पर केन्द्रित रहता था। राजा व सामन्त एक दूसरे की शक्ति को कम करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहते थे। अन्त में राजाओं को सामन्तों की शक्ति को नियन्त्रित करने में सफलता मिली। इसमें उन्हें अनेक परिस्थितियों का सहयोग मिला। इसके फलस्वरूप इंग्लैण्ड को छोड कर अन्य देशों में राजतन्त्र निरंकुश हो गया। इंग्लैण्ड में भी टयूडर व प्रथम दो स्टुअर्ट (Stuart) शासकों ने निरंकुश होने के प्रयत्न किये।

मध्यकालीन युग के पूर्व की राजनीति पर चर्च का गहरा प्रभाव था। इस युग में यह प्रभाव किसी हद तक बना रहा। पोप ने अनेक देशों की राजनीति में समय समय पर हस्तक्षेप किया। स्थानीय आर्च बिशप व बिशपों ने भी अपने अपने देशों की राजनीति में सक्रिय भाग लिया।

मध्य युग के अन्त में स्वतन्त्र नगरों का भी उदय हुआ। इटली में ऐसे कई नगर थे जो अपना प्रशासन स्वंय चलाते थे। स्पेन के अनेक नगरों में कम्यून का शासन था।

इस युग के अन्त में पश्चिमी यूरोप के देशों में राष्ट्रीय राज्यों का उदय हुआ। इंग्लैण्ड को छोड़ कर शेष राज्यों के शासन का स्वरूप निरंकुशता की ओर अग्रसर होता गया। इंग्लैण्ड में इस समय से ही संसदीय प्रणाली का विकास आरम्भ हुआ।

शब्दावली:

गढी : सामन्तों की जागीर

काश्त : भूमि का वह भाग जिसकी उपज कृषि दासों को मिलती थी।

डिमीनः जमींदारों की हवेली के साथ की लगी जमीन जिसकी उपज उसे मिलती थी।

परती : भू-स्वामियों की सम्पदा के अन्तर्गत भूमि का वह भाग जिस पर खेती नहीं होती थी।

स्टेट्स जनरल : 1300 ई0 में फ्रांस में गठित त्रि-सदनीय संस्था

क्यूरिया : सामन्तों की सभा

पार्लियामेन्ट ऑफ पेरिस : फ्रांस में कानून के मामलों पर विचार विमर्श करने के लिये राजा द्वारा गठित एक संस्था

गोल्डन बुल : 1356 ई0 में जर्मनी में राजा के चुनाव के लिये नवीन प्रणाली के सम्बन्ध में आदेश

विटानगेमोर (विटान) : इंग्लैण्ड के प्रभावशाली व्यक्तियों की एक परामर्शदात्री सभा

मैगनम कौंसिलम : विलियम प्रथम द्वारा इंग्लैण्ड के नगरों के प्रशासन के लिये स्थापित वृहद सभा

क्यूरिया रेजिस : विलियम प्रथम द्वारा इंग्लैण्ड में स्थापितशाही परिषद। इससे प्रिवी कौंसिल और प्रिवी कौंसिल से केबीनेट का विकास हुआ।

मेग्नाकार्टा : 1215 में इंग्लैण्ड के सम्राट जॉन द्वारा स्वीकृत महाधिकार पत्र

2.8 अभ्यास के लिये प्रश्न :

(1) सामन्तवाद के उद्भव के बारे में विभिन्न विद्वानों के मतों की विवेचना कीजिए।

(2) सामन्तवाद में राजा, सामन्तों और कृषकों के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालिये।

(3) मध्यकालीन युग में पूर्वी फ्रांस, पश्चिमी फ्रांस तथा इंग्लैण्ड में राजतन्त्र की प्रगति की संक्षिप्त में विवेचना कीजिये। इंग्लैण्ड संसदीय प्रणाली की ओर किस प्रकार अग्रसर हुआ ?

(4) सामन्तवाद के पराभाव के कारणों का विश्लेषण कीजिए।

(5) निम्नांकित पर टिप्पणी लिखिये :

अ- मध्य युग में पवित्र रोमन साम्राज्य

ब- राष्ट्रीय राज्यों के उदय के कारण

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ :

Author Name of Book

1. Brown S.M., *Medieval Europe*

2. J. Thatcher & Schwill., *A General History of Europe, Part I*

3. H.A.L. Fisher, *A History of Europe*

4. C.W. Previte, Orton & Z.N. Brooke (Editors) The Cambridge Medieval History

Orton & (Volume V to VIII)

5. Sydney Painter: A History of the Middle Ages (284 - 1500).

6. Carl Stephenson: Medieval Feudalism

7. Michael Gilmore: Age of Humanism (1453-1517)

इकाई- 3
सामन्तवाद की श्रेणियां एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सामंतवादी वातावरण और दो सामन्ती युग

3.3 यूरोप में सामन्तवाद का उदय

3.4 फ्रांस की विविधताः दक्षिण पश्चिम और नौरमंडी

3.5 इटली

3.6 जर्मनी

3.7 ऐंग्लो सेक्सन इंग्लैण्ड

3.8 उत्तरी-पश्चिमी स्पेन

3.9 सारांश

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.11 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्यः

इकाई न0 1 में "सामन्तवाद" की परिभाषा करते हुए, हमने उसकी उत्पति एवं विकास का निरुपण करने तथा उसकी कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करने का प्रयास किया था। इस इकाई में मध्ययुग में यूरोप के विभिन्न देशों में प्रचलित सामन्तवाद की विभिन्न श्रेणियों एवं स्वरुपों का परीक्षण एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जायेगा।

3.1 प्रस्तावना

"सामन्तवाद" की अब भी एक ऐसी परिभाषा विकसित करनी होगी जो सर्वमान्य हो। निषेधात्मक बोध में प्रारम्भ करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह पूंजीवाद की तरह कोई विश्व व्यवस्था नहीं थी। इतिहास के समग्र काल में सामन्तवाद एक असर्वव्यापी सामाजिक-आर्थिक संगठन का एक विशिष्ट रुप था जो काल और क्षेत्र की सीमा में अपनी विशेषता संजोये हुए था, जहॉ उत्पादन के विशिष्ट तरीकों एवं संस्थाओं का प्रतिपादन किया गया था। मार्क ब्लॉक ने सामन्तवाद को सनिर्मित करने

वाले तत्वों का सामिप्य रूप से उल्लोखा किया है। इसमें शामिल हैं- एक आश्रित कृषक वर्ग वेतन (जिसे देने का प्रश्न हीं नहीं था) के स्थान पर सेवा के बदले भूस्वामी द्वारा प्रदत्त भूखण्ड़, विशिष्ट योद्धाओं के वर्ग की सार्वभौमता, योद्धा वर्ग में आज्ञाकारिता एवं सुरक्षा के रुप में एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति को बॉधने वाले बन्धनों ने जागीरदारी के विशिष्ट स्वरुप वैसल व्यवस्था को ग्रहण कर लिया। सत्ता के विकेन्द्रीकरण ने अपरिहार्य रुप से अव्यवस्था की अभिवृद्धि की। इन सबके मध्य संघों के अन्य स्वरुपों का अस्तित्व में रहना, परिवार व राज्य में से अन्तवाले याने राज्य ने द्धितीय सामन्ती युग में नवीन शक्ति प्राप्त की। ये यूरोपीय सामन्तवाद के मूलभूत लक्षणों जैसे प्रतीत होते है। आर कोलबोर्न (R. Coulborun) जैसे अन्य विद्वानों के लिये सामन्तवाद सरकार की एक प्रणाली है न कि आर्थिक और सामाजिक पद्धति। यद्यपि यह स्पष्टतः सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण को परिवर्तित करता है एवं किया भी है। मौरिस डॉब (Maurice Dobb) ने सामन्तवाद को दासत्व के समकक्ष बताया है और अन्तवाले शब्द याने दासत्व को स्पश्ट रुप से एक अर्थ में शोषण का एक प्रकार बताया जो कि तथकथित अतिरिक्त आर्थिक अनिवार्यता के किसी रूप से लागू की जाती है और स्थाई रहती है।

भारतीय विद्वानों में एस0 नुरुलहसन ने ''सामन्तवाद'' का अर्थ मुख्य रुप से एक ऐसी कृषि सम्बन्धी आर्थिक पद्धति के रुप में लिया, जहॉ गेर आर्थिक दबाव और कृषि एवं सहायक हस्तकला उत्पादन क्षेत्र में अपनी भूमिका के द्वारा उत्पन्न अतिरेक सामन्य रूप से संकुचित शासक वर्ग में आपस में बॉट लिया जाता है। अन्यविद्वान प्रो0 आर0 एस0 शर्मा ने चौथी और तेरहवीं शताब्दियों के बीच के समय को ''साम्न्तवादी'' काल'' बताया। उन्होंने यूरोपीय सामन्तवाद के कई लक्षणों को इस काल में भारत में विकसित हुए बताया।

''सामन्तवाद'' की कोई भी स्थैतिक परिभाषा पूर्णतः संतोषजनक नहीं हो सकती। सामन्तवाद भी अन्य पद्धतियों के समान निरन्तर विकसित होने वाली पद्धति है। दूसरी परिभाषाओं के स्वाभाविक सहज अनुमान के रूप में निम्न विचार गम्यता प्रस्तुत हैः-

''सामन्तवाद'' को किसी निश्चित प्रकार की चुनौतियों के प्रत्युतरों की श्रृंखला रूप में उल्लिखित किया जा सकता है। एक चुनौती जिसने समाज को प्रभावित किया वह थी- राजनीतिक व्यवस्था की गिरावट एवं कमजोर होना। इस प्रकार की पद्धति के विश्रृंखलन प्रतिक्रिया के रूप में पुनरर्चना की ओर कई कदम सामन्तवाद की ओर अग्रसर होते हैं। उन समाजों में जहॉ शक्तिशाली सामन्तवादी प्रवृतियॉ होती है वहॉ सामान्यतया कृषि की प्रबलता होती है तथा आर्थिक स्वार्थ स्थानीय होते हैं। वहॉ दूर-दूर तक राजनीतिक संगठन के समर्थन का भार आर्थिक लाभों से पूरा नहीं होता है। जिन देशों में कृषि की प्रबलता होती है वहॉ स्थानीय प्रभावशाली वर्ग का अस्तित्व में होना सामान्य है। वे ही राजनीतिक सत्ता का अधिकांशतः उपभोग करते हैं। जब केन्द्रीय सरकार उन लोगों को आज्ञाकारी बनाये रखने में असफल हो गई तो इनकी वास्तविक शक्ति सहज में ही विधानतः हो गई जो उनके वंशजों ने विरासत में प्राप्त की। अन्त में यह कहा जा सकता है कि लार्ड-जागीरदार वर्ग के

सैनिक एकाधिकार या निकट सैनिक एकाधिकार के बिना सामन्तवाद का अस्तित्व रह नहीं सकता है। यह एकाधिकार सहज ही समझ में तब आया जब युद्ध की नई तकनीकों का सूत्रपात हुआ, जो बड़ी खर्चीली सिद्ध हुई।

3.2 सामन्तवादी वातावरण और दो सामन्ती युगः

विद्वान वर्ग इस राय में सर्वसम्मत है कि पश्चिमी यूरोप में सामन्तवाद के दो पृथक चरण थे जो एक दूसरे से एकदम भिन्न थे। प्रारम्भिक अवस्था में सामन्तवाद राजीनति में प्रभावशाली तथ्य था परन्तु इस तथ्य का कोई सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण नहीं था। अपने उत्तरकालीन चरण में सामन्तवाद अन्य प्रकार के राजनीतिक संगठनों से प्रतिस्पर्द्धा करता हुआ धीरे-धीरे अपना वर्चस्व खो रहा था।

सामन्तवाद का प्रथम काल 1100 ई0 के लगभग उतरी फ्रॉस की संस्थाओं में उत्कृष्ट रूप से देखा जा सकता है। उतरी फ्रांस में एक आधारभूत संस्था जो एक छोटा सामन्तीय राज्य था स्थानीय लार्ड के प्रभाव में था। वह कोई भी पदवी धारण कर सकता था। वह सदैव नहीं पर सामान्यतया राजा का जागीरदार होता था। वह अपने क्षेत्र में अन्तिम सत्ता होता था और उसकी स्थिति उसकी सैनिक शक्ति पर आधारित होती थी। उसकी सेवा में प्रशिक्षित सैनिकों का एक समूह होता था, उसके पास उसकी समग्रभूमि पर दुर्गो से सुरक्षित सामरिक स्थल थे, उसके पास सेना व दुर्गो के खर्च के लिये पर्याप्त आर्थिक साधन थे। उसके प्रभाव क्षेत्र में छोटे लार्ड भी हो सकते थे उन्हें सुरक्षा के लिये या उनकी अपनी न्यून सैनिक शक्ति ने, उनके समक्ष उसकी अधीनता स्वीकार करने के अतिरिक्त, कोई दूसरा विकल्प नहीं छोड़ा हो। इस प्रकार के सम्बन्धों की कोई परिभाषा नहीं थी। सामन्त द्वारा नियंत्रित प्रदेश के क्षेत्र और सता में अनेक उतार-चढ़ाव हो सकते थे। ये उतार-चढ़ाव न केवल एक वंश से दूसरे वंश तक लेकिन एक दशक से दूसरे दशक तक आ सकता था। केवल सरकर संचालन की प्रणाली ही अपेक्षाकृत स्थायी थी। एक क्षेत्र के रीति-रिवाज भी लगभग वे ही रहते थे।

सामन्तवाद का दूसरा चरण तेरहवीं शताब्दी की समग्र कालावधि में आता है। इस समय जागीरदारी के सम्बन्ध ऊपरी स्तर पर कठोर हो गये और नीचे स्तर पर ढीले होने लगे। एक प्रान्त का शासक अपने से उच्च की आज्ञा का सम्मान करता था और अपने से छोटों की कम सेवा प्राप्त करता था। प्रारम्भिक काल से भिन्न स्थानीय लार्ड व्यवहार में अब भी कई मुख्य कार्य करता था परन्तु वह ऊपरी सत्ता से निर्देशित व नियंत्रित किया जा सकता था। प्रदेश के छोटे जागीरदार सीधे उच्चतम सता को अपील कर सकते थे और कुछ मामलों में उच्चतर सत्ता स्थानीय लार्ड की उपेक्षा करते हुए छोटे जागीरदार से सीधा व्यवहार कर सकती थी। रॉयल कानूनी न्यायालयों के विकास ने स्थानीय लार्ड की सत्ता को और अधिक नियंत्रित कर दिया। सामन्तवाद के दूसरे चरण में, जो अधिक संगठित था, कर्तव्य और अधिकार स्पष्ट एवं विस्तृत रूप में उल्लेखित किये गये। बल अभी एक महत्वपूर्ण था परन्तु वह केवल राजा तथा लार्डों के पास ही था जो इसके उपयोग द्वारा लाभ प्राप्त कर सकते थे। प्रथम चरण से दूसरे चरण में परिवर्तन बड़ी सुगमता से हो गया। प्रथम चरण में रोमन कानून और चर्च के ईसाई राजतंत्र के विचारों का अभाव था परन्तु

फिर भी अनुशासन और विकास के कुछ सिद्धान्त अवश्य रहे होंगे। प्रारम्भिक सामन्तवादी समाज यद्यपि अव्यवस्थित था परन्तु वह कभी भी पूर्ण अस्त-व्यस्त नहीं था और प्रत्येक स्थिति में आदिम सरकार से अधिक सधा हुआ था।

3.3 यूरोप में सामन्तवाद का उदयः

हमने देखा कि पश्चिमी यूरोप में सामन्तवाद के दो पृथक चरण थे। अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि सामन्तवाद ने प्रथम बार यूरोप को किस प्रकार प्रभावित किया और यह पश्चिम के विभिन्न देशों व इंग्लैण्ड में किस प्रकार विकसित हुआ ? सातवीं शती के लगभग रोमन साम्राज्य मुख्यतः इसलिए ध्वस्त हो गया कि उसके निवासी उसकी सुरक्षा के पर्याप्त प्रयत्न करने में असफल रहे। जर्मन वंश के राजा जो रोमन सम्राटों के उतराधिकारी बने, वे रोमन सभ्यता के विरोधी नहीं थे, अतः रोमन सभ्यता का अधिकांश अब भी सुरक्षित था। नये शासकों ने केन्द्रीय सत्ता की शक्ति को बनाये रखने का प्रयास किया और स्वतंत्र स्थानीय लार्ड-शिप के विकास को रोकने का प्रयत्न किया। जर्मनवंशीय शासकों में महानतम शार्लमेन ने पश्चिमी यूरोप के एक बड़े भू-भाग को एक नये साम्राज्य के रूप में एकीकृत किया। संगठित लेटिन व जर्मनवंशीय लोगों में न तो समान राजनीतिक परम्पराऐं थीं न ही समान सांस्कृतिक परम्पराऐं ही और आर्थिक सम्बन्ध नगण्य थे। शार्लमेन अपने साम्राज्य को चर्च के नैतिक समर्थन और अपने लोगों-फ्रेंकों की सेना की शक्ति के सहयोग से व्यवस्थित रूप से संभाले रखने में सफल रहा। यद्यपि शार्लमेन ने एक सामान्य यूरोपीय सभ्यता की नींव रखने का प्रयत्न किया पर स्थानीय शक्तियॉ अभी तक एकता स्थापित करने वाली शक्तियों से कहीं अधिक शक्तिशाली थी। स्थानीय सरकार धन और पद वाले काउन्ट्स (Counts) के हाथों में थी, जो राजा से अधिकार प्राप्त करते थे पर वे हमेशः उसके आज्ञाकारी नहीं थे। तो यह काउन्ट्स भी सदा अपने जिलों के बड़े-बड़े भूस्वामियों को अपने अधिकार में रखने में सफल नहीं होते थे। इतिहास के इस काल तक जागीरदारी आम होती जा रही थी और कुछ समानता वाली जागीरदारी तत्पश्चात् दृष्टिगोचर हो रही थी। रईस अथवा स्थानीय लार्डों के अपने अधिकारियों से सम्बन्ध अधिक प्रगाढ़ थे, जबकि राजा व रईसों से सम्बन्ध इतने गहरे नहीं थे।

शार्लमेन के उत्तराधिकारी अयोग्य थे। तदनन्तर स्थानीय लार्डों या रईसों ने अपनी स्वतंत्रता जतानी प्रारम्भ कर दी। उनका पद उनकी निजी सम्पति बन गई जो कि उनके पुत्रों को हस्तांतरित की जानी थी। शार्लमेन साम्राज्य का छिन्न-भिन्न होना भी यूरोप में आक्रमणों के युग में प्रारम्भ हुआ, जिसकी अन्तिम पराकाष्ठा "सामन्तवाद" की स्थापना में हुई। सेरसेनीज (Saracens) ने फ्रॉस के दक्षिणी तट और इटली के पश्चिमी तट पर हमले किये। मेग्यार्स (Magyars) ने हंगरी पर कब्जा कर लिया और इसे आधार बनाकर उन्होंने एक बड़ी अश्वसेना दक्षिणी जर्मनी, पूर्वी फ्रॉस और उत्तरी इटली में अभियान के लिये भेजी। सबसे निकृष्ट हमलावर नॉर्धन मैन या वाइकिंग्ज (Northern Men or Vikings) उतरी यूरोप से आने वाले लोग थे। उनके छिछले पानी में भार ढोने वाले जहाजों ने उतरी यूरोप की सारी नदियों को पार किया और उन्होंने हमलावर दल भेजें जिन्होंने ग्रामीण इलाकों में लूटमार की। इन

झुण्डों के विरुद्ध केन्द्रीय सरकार भी शक्तिहीन थी। इसलिए सुरक्षा एक स्थानीय जिम्मेवारी हो गई। केवल स्थानीय लार्ड और उसके गढ़ ही उसके साम्राज्य के अधिकतर नागरिकों को सुरक्षा प्रदान कर सकते थे। इन परिस्थितियों में सामन्तवादी सरकारें शुरु में उतरी फ्रॉस से प्रथम दिखाई देने लगी। यद्यपि प्रारम्भ में वे ठीक तरह से व्यवस्थित नहीं थी पर भविष्य में होने वाले दो लाभों ने इसके विकास को शकुनीक बना दिया। प्रथम तो सुविधाभोगी व्यक्तियों को जिम्मेवारी धारण करनी पड़ी। दूसरा यह कि सामन्तवाद ने सरकार के ढांचे का सरलीकरण इस हद तक किया कि लागों ने इसमें भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। लोगों के भाग लेने से उन्नत सरकारों का निर्माण हुआ जहाँ योग्य सामन्तों ने उन्नत सरकारों के लिये प्रयत्न प्रारम्भ किये। संक्षेप में सामन्तवाद ने समयातीत संस्थाओं को समाप्त कर दिया और उनके स्थान पर अधिक लचीली संस्थाओं का सृजन किया।

इतना उल्लेख करने के बाद अब हम यूरोप के देशों की ओर मुड़ते हैं जहाँ सामन्तवाद विभिन्न श्रेणियों और प्रतिरूपों में अपने प्रथम व द्वितीय चरणों के दौरान फला फूला।

3.4 फ्रांस की विविधताः दक्षिण पश्चिम और नोरमंडी

फ्रॉस में अधिकतम भौगोलिक विविधताऐं विद्यमान है। इस प्रकार एक संस्थाओं का समूह शक्तिशाली विभिन्नताओं से अलग-अलग पहचान बनाए हुए है पर किसी तरह से राष्ट्रीय एकता के बन्धनों में बन्धे हुए हैं। दक्षिण के क्षेत्र में जो एक्यूटेनियन साउथ (Acquitanian south) कहा जाता है जिसमें Toulouse, Gascony और urenne जैसे क्षेत्र सम्मिलित है, इसका सामाजिक ढांचा बहुत ही विशिष्ट था और जिस पर फ्रेंकिश संस्थाओं का बहुत ही कम प्रभाव था। एलोडस (Allods)- छोटे कृषि भूखण्ड और जमीदारियॉ (पूर्व इकाई में परिभाषित) एक लम्बे अरसे तक विद्यमान रही। जागीर (फीफ-सामन्ती सम्बन्धों की मुख्य ईकाई या कड़ी) भी दसवीं शताब्दी में इस क्षेत्र में अपने अस्तित्व में आई। परन्तु बारहवीं शताब्दी तक इस अर्थ में केवल सभी प्रकार के भूखण्ड (भूस्वामी अधिकार द्वारा ली गई वस्तु) सम्मिलित थे, जिनमें उदार किराया, वस्तु या कृषिश्रम सेवा के रुप में था। जब उतरी लोग (North Men) फ्रॉस में बसे तो उन्हें "फीफ (Fief)" तथा वासलेज (Vassalage) जैसी संस्थायें नयी लगी लेकिन वे उच्च रूप से विकसित थी। विजयी नरेशों ने इस सामन्ती बन्धनों के जाल का अपनी सता को मजबूत बनाने में प्रयोग किया। परन्तु जागीर प्रथा (Fief holiding) का क्रियान्वयन अलग-अलग स्तरों व वर्गों के अनुसार हुआ। राजा की अवज्ञा करने वाले जागीरदार थे और वावासोर (Vavasour) भी थे। अन्तवाला याने वावासोर जागीरदारों की सबसे कनिष्ठ गरिमा श्रेणी थी। सशस्त्र सेवाओं के आभार के अतिरिक्त कभी घोड़े की पीठ पर, कभी पैदल सेवारत वावासोर श्रेणी के जागीरदार को किराया भी देना पड़ता था और कभी-कभी श्रम सेवायें भी अर्पित करनी पड़ती थी। यह वास्तव में आधी जागीर थी और अर्ध्द दासत्व था। यह इस प्रकार सामन्तवाद ने फ्रॉस में अपनी जड़े जमाई।

3.5 इटली-

लोम्बार्डियन इटली में व्यक्तिगत निर्भरता के सम्बन्धों के तत्काल विकास को देखा जो हर प्रकार से फ्रान्स में प्रचलित सम्मानों के समकक्ष था चाहे एक व्यक्ति की सेवा से लेकर सैनिक संस्थान में सेवा तक क्यों न हो। युद्ध साथियों को (राजा, डयूक इत्यादि ने घनिष्ठ अनुगामी) घासिन्दी (Gasindi) का नाम दिया गया। अनेक लोगों के पास सम्पति थी जो अधीनता को बरकरार नहीं रखने पर वापस राजा को देनी पड़ी। एक नया महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि राजा और युद्ध साथियों के बीच बन्धन समाप्त किये जा सकते थे। वे दोनों पक्षों को बाधित नहीं थे। इटली में जर्मन आक्रमणकारियों का प्रभाव स्पष्टतया देखा जा सकता है। इस प्रकार "फीफ" शब्द इटालियन शब्दावली में सम्मिलित किया गया। प्रारम्भ में इसका अभिप्राय चल सर्मपिति से था पर दसवीं शताब्दी में इसका अर्थ सैनिक को दी जाने वाली सम्पति से हो गया। इसी समय के आसपास गैलो-फ्रेंकिश (Gallo-Frankish) शब्द वासल (Vassal) ने धीरे-धीरे इटेलियन शब्द (Gasindus) (पूर्व संदर्भित) का स्थान ले लिया।

विदेशी कुलीन कई सामाजिक मूल्यों को अपने साथ लाये जिनको इटालवी पद्धति ने शीघ्र ही अपना लिया। राजा और जागीरदार को बांधने वाले समबन्ध एकदम गुत्थ गये और ठोस बन गये। इटली के सामन्तवाद ने आधिक्य रूप में फ्रॉस के सामन्तवाद की उन्नति व विकास के पथ का अनुगमन किया। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से इटली ने सामन्ती बन्धनों की प्रकृति पर प्रभाव डालने वाले कई अध्यादेश जारी किये। "स्वामीभक्ति की शपथ" ने सामन्ती बन्धनों में अग्रमिता ली। यह एक महत्वपूर्ण कृत्य था जो किसी प्रकार से औपचारिक रूप नहीं लिखा गया परन्तु फिर भी यह दायित्व के बन्धनों में एक प्रमुख प्रक्रिया थी।

इटली के सामन्तवाद की महत्वपूर्ण विशेषता थी पोप सरकार पर सामन्तवादी संस्थाओं का प्रभाव। 999 A.D. में पोप Sylerster II ने पाया कि यद्यपि जायदादें चर्च द्वारा प्रदान की जाती थी, वेटिकन अनुदानों में जागीर और उसके फलस्वरूप होने वाले दायित्व का अभाव है। उसने जागीर तत्व को चर्च के अनुदानों में प्रचलित करने का प्रयास किया पर वह उसमें बहुत अधिक सफल नहीं हुआ। परन्तु उसके उत्तराधिकारियों के समय में जागीर और अधीनता की नियमित स्वीकृति ने धीरे-धीरे पोप सरकार की पद्धति में प्रवेश किया।

3.6 जर्मनी

मेज और फाइन प्रांत प्रारम्भ रूप से ही साम्राज्य के आन्तरिक अंग थे जो क्लोविस (Clovis) द्वारा स्थापित किये गये थे। केरोलिंजियन (Carolingian) सत्ता के केन्द्र थे। जर्मन राज्य जिसने दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में निश्चित स्वरूप प्राप्त किया, इसमें कई वृहद् क्षेत्र सम्मिलित थे जो इन क्षेत्रों के समाज द्वारा बड़े निर्मित विजातीय मानवसमूह गाल्स फ्रेंकिश (Galls-Frankish) से बाहर थे। इन सब क्षेत्रों में राइन और एल्ब के बीच सेक्सन (Saxon) मैदान प्रमुख था। शार्लमेन के समय से ही पश्चिमी गुट में लाये गये थे। जागीर और जमींदारी संस्थायें फेनिश (Phenish) जर्मनी के आरपार यद्यपि फैली हुई थी। नियमित अधीनता का अर्थ जर्मनी में उच्च वर्ग की शुद्ध अधीनस्थता से था। बहुत ही कम अवसरों पर अपवाद रूप में वासल

को मित्रता के चुम्बन सहित हाथ मिलाने का अवसर आता था जिससे वे एक ही स्तर पर आते थे।

जर्मनी में सैनिक सेवा और जमीन जोतने के बीच अन्तर तथा विभिन्न वर्गों के बीच विभाजक रेखा ने जड़ें पकड़ने में काफी लम्बा समय लिया। दसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में राजा हेनरी प्रथम ने योद्धाओं को किलों के निकट में बसाने की प्रथा का श्रीगणेश किया। वे केवल आक्रमण के समय किले की व्यवस्था करने के लिये आते थे और उसके बाद कृषि करने के लिये लौट जाते थे। इस प्रकार ये लोग असली खेतिहर थे जो अपने हाथों से खेती करते थे।

जर्मन सामन्तवाद की दो विशेषताऐं प्रत्यक्ष थी, जिन्होंने जर्मन समाज में सामन्तीकरण के विकास की बाधाऐं उत्पन्न करने का प्रयास किया। एक दृष्टिकोण तो यह था कि बड़े लोगों की पूर्ण स्वामित्व वाली सम्पति को राजा छू नहीं सकता था। जागीरें रोकी जा सकती थी पर पूर्ण स्वामित्व वाली जायदाद वंशानुगत सिद्धान्तों से प्रशासित होती थी। दूसरा दृष्टिकोण यह था कि जागीर और जमींदारी को प्रशासित करने वाले कानूनों को पृथक वैधानिक पद्धति माना जाता था। ये कानून यूरोप के अन्य भागों के समान सम्पूर्ण ढांचे में गुत्थे हुए नहीं थे।

3.7 ऐंग्लो सेक्सन इंग्लैंड-

प्रारम्भिक काल से ही ब्रिटिश द्वीपवासी जर्मन प्रभावों से विमुक्त नहीं थे। "सामन्तवाद" के इतिहासकारों ने आठवीं और नवीं शताब्दियों के अंग्रेजी समाज के ढांचे को जर्मन समाज के ढॉचे के समान ही बताया है। परन्तु इस समाज ने ग्यारहवीं शताब्दी तक विकास क्रम को करीब-करीब पूर्ण रूप से स्वतः ही अपनाया। इग्लैंड में निर्बल आदमी की सुरक्षा और मजबूत आदमी की सत्ता की आकांक्षा की आवश्यकता को कोई भी परख सकता था। इन सम्बन्धों ने दोनों को विदेशी आक्रमणों, विशेषतया नवीं शताब्दी के पश्चात् डेनिस आक्रमणों का सामना करने की स्थिति को अधिक घनिष्ठ बनादिया। राजा लोग निर्बलों के संरक्षक थे, उन्होंने पूर्ण समर्पण पर जोर दिया और उद्घोषित किया कि यह अनुबन्ध सार्वजनिक व्यवस्था के हित में था। दसवीं शताब्दी और उसके पश्चात् अगर कोई आदमी स्वामी रहित था– (जो आगे ऐसा कोई आदमी नहीं था जो किसी शक्तिशाली व्यक्ति या राजा के स्वामीत्व में नहीं था) उसे कानूनन सम्पूर्ण रूप से बहिष्कृत किया जाता था और उसका पीछा करते हुए उसे कानून के नाम पर मारा जा सकता था। राजा अपने योद्धाओं और सैनिक अधीनस्थों को अपने लाभार्थ ही काम में लेता था। वे सम्पूर्ण साम्राज्य में फैले हुए थे और उनको सार्वजनिक हित के असली कार्य सौंपे हुए थे

राजा के सशस्त्र अधिकारी या रईस (उच्चवंशीय व्यक्ति), कुलीन व्यक्ति एवं गैर कुलीन योद्धाओं के रूप में विभाजित थे। समय के अन्तराल ने इस खाई को और चौड़ा कर दिया। पूर्व वर्ग में बहुत कुशल योद्धा थे, उन्हें "नाइट" (Knight) कह जाता था। बाद वाले वर्ग में सामान्य कृषक थे जिन्हें केवल युद्ध के समय सेव प्रदान करने के लिये आहूत किया जाता था। नाइटस (Knights ही केवल विशेषाधिका प्राप्त वर्ग था जो इस तथ्य से सिद्ध हो जाता है कि उन्हें घुड़सवारी का प्रशिक्षण दिया जाता था। पैदल सेना जिसमें गैर-कुलीन योद्धा थे, यह पूर्ण रूप से प्रशिक्षित

नहीं थी और यह 1066 ई0 की हेस्टिंग्ज की लड़ाई के परिणाम का प्रमुख तथ्य था।

संरक्षित सम्बन्ध (एक व्यक्ति को उसके स्वामी से बांधने वाले) बिना किसी बाधा समाप्त किये जा सकते थे।

यह सत्य है कि कानून एक आदमी को उसके स्वामी की अनुमति के बिना उसे छोड़ने को प्रतिबंधित करता है परन्तु इस अनुमति का परित्याग नहीं किया जा सकता था जब तक कि सेवाओं के बदले में प्रदत्त सम्पति को पुनः लौटा दी गई हो और भूतकाल में किसी प्रकार का आभार पूर्ति बाकी नहीं हो। इस प्रकार एक प्रमुख अधिकार जो योद्धा के पास निहित था, वह था अपने नये लार्ड का चयन का अधिकार।

योद्धाओं व अधिकारियों को प्रदत्त सम्पति दोनों प्रकार की थी। प्रथम फेसी प्रदत्त जायदाद, जिसमें अनुदान प्राप्तिकर्ता के पूर्ण स्वामित्व के साथ वंशानुगत अधिकार भी थे। दूसरे प्रकार में जायदाद जब तक अनुदान प्राप्तिकर्ता के पास रहती थी, वह सेवायें अर्पित करता था या उसके जीवनकाल तक रहती थी। दुहरी प्रवृति वाले मामले भी थे। एक व्यक्ति को जायदाद स्वीकृत की जा सकती थी, पूर्ण स्वामित्व नहीं परन्तु अपने अनुदान प्राप्तिकर्ता की स्वीकृति से वह दूसरे लार्ड की सेवा कर सकता था। यह द्वैध व्यवस्था केवल इंग्लैंड में ही प्रचलित थी।

3.8 उत्तरी-पश्चिमी स्पेनः

उतरी-पश्चिमी स्पेन (Austurias, Lion, Castile, Galicia- और बाद में पुर्तगाल से सृजित) सामन्तवाद के बढ़ते हुए प्रभाव से मुक्त नहीं रह सका क्योंकि पेरेनीज (Pyrenees) के दर्रो को फ्रांस के नाइटस व पादरी धड़ल्ले से रौंदते हुए चले गये। यहाँ फिर निजि निर्भरता के बन्धन दृष्टिगोचर होते हैं। मुखियाओं व लार्डो के पास उनके घरेलू योद्धा थे, जिन्हें 'Criades' कहते थे। "वासल" शब्द भी उनके लिये प्रयुक्त होता था। नियमित अधीनता (Homage) शब्द भी बहु प्रचलित था। इस समाज को भी भूमि प्रदान की जानकारी थी पर इसमें एक अन्तर दृष्टिगोचर होता था। राजा और सरदार लोग अक्सर मूरिश क्षेत्रों के अभियानों से लूट का अथाह माल लेकर आते थे। अधिकारी गण इस लूट के माल के बजाय कृषि योग्य भूमि को अधिक महत्व देते थे।

मूरों से पुनः विजित व व्यवस्थित जमीन पर पुनः दावा पेश किया गया जिससे किसानों के पास छोटे-छोटे भूखण्डों का सृजन प्रारम्भ हुआ। ये कृषक अपने यूरोप के किसानों से अधिक स्वतंत्र थे। वे प्रभावशाली योद्धा थे क्योंकि उन्हें अपरिभाषित सीमाओं की रखवाली करनी पड़ती थी। आगे नाइट्स के अतिरिक्त (वे जिनके पास जायदाद थी) एक "कृषकीय नाइटहुड" (Peasant Knight hood) थी। ये धनाढ्य स्वतंत्र कृषक थे जो अपनी शर्तो के अनुसार युद्ध काल में सेवायें अर्पित करते थे।

3.9 सारांशः

इस प्रकार हमने यूरोप के विभिन्न देशों में सामन्तीय सम्बन्ध व प्रभावों के उदय का परीक्षण किया। प्रत्येक देश में स्थानीय वातावरण ने उस देश में "सामन्तवाद" के सृजन में निर्णायक भूमिका निभाई। विद्वान लोग अब भी चाउमीन, मेसोपोटामिया, मिश्र, भारत, रूस और बाइजेन्टियम (Byzantium) जैसे प्रदेशों में इसी प्रकार के सामन्तवाद के विकास की सम्भावनाओं पर वाद-विवाद प्रस्तुत करने की ओर झुकाव रखते हैं। यद्यपि यह वाद-विवाद अन्तहीन है, यह कहा जा सकता है कि यहाँ प्रारम्भ में दी गई परिभाषा व्यापक रूप में पश्चिमी यूरोपीय संस्थाओं पर लागू होती है।

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्नः

(i) सांमतवादी वातावरण का विश्लेषण दीजिये।

(ii) यूरोप में सामन्तवाद का उदय कब और कैसे हुआ ?

(iii) यूरोप के विभिन्न देशों में सांमन्तवाद की प्रमुख विशेषता बताइये।

3.11 संदर्भ ग्रन्थः

Marc Block : Feudal Society

R. Coulbourn : Feudalism in History

Maurice Dobb : Studies in the Development of Capitalism.

F.L. Gansh of : Feudalism

F. Lot : The End of the Ancient World and the Beginning of the Middle Ages.

इकाई-4
टर्की की राजनीति, अर्थव्यवस्था और समाज

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 टर्की का राजनीतिक विकास और प्रारूप

4.3 टर्की की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था

4.3.1 समाज का स्वरूप

4.3.2 सामाजिक वर्गीकरण

4.3.3 कानून व्यवस्था

4.3.4 मुख्य तत्कालीन संस्थाऐं

4.4 आर्थिक व्यवस्था

4.5 सारांश

4.6 अभ्यास कार्य

4.7 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य-

अधिकतर विद्यार्थी टर्की के इतिहास को एक यूरोप या विश्व इतिहास के संदर्भ में पढ़ते हैं तो उनके मस्तिष्क में "यूरोप का बीमार आदमी" का चित्र आता है, परन्तु इस इकाई में जब हम टर्की की राजनीति, अर्थव्यवस्था और समाज के बारे में जानने का प्रयास करते हैं तो विद्यार्थी को यह ज्ञात होकर आश्चर्य होगा कि ओटोमन साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर आधुनिक आलबानिया, यूनान, बलगेरिया, यूगोस्लाविया रोकाविया, हंगरी और रूस के कुछ भाग, ईराक, सीरिया, पेलिस्टाइन, मिश्र, अल्जीरिया, और अरब के कुछ भाग पर विजय प्राप्त कर चुका था।

मध्यकालीन इतिहास में इस्लाम धर्म और राजनीति में निसन्देह अरबों की भूमिका अग्रगणीय है परन्तु तुर्की खानों की विश्व इतिहास में इस समय जो भूमिका थी उसे इस्लाम धर्म से सम्बन्धित इतिहासकारों ने भी इतना प्रकाश में नहीं लाया जितना कि इस इकाई के अध्ययन के बाद पता चलता है। उस समय भी चार महान सभ्यताओं की तुर्की खानों से सम्पर्क स्थापित हुआ। यह चार सभ्यतायें थीं, चीन, भारत, बाइज़ेन्टाइन और ईरान।

प्रस्तुत इकाई में हम टर्की के सामाजिक और आर्थिक ढांचे का भी अध्ययन करेंगे। इसमें तुर्की, कवीले, उनके कानून, ओटोमन साम्राज्य सरदार, सुल्तान, शारियत सिविल कानून, जाने साकी, देव शिर इत्यादि, व आर्थिक व्यवस्था शामिल है।

4.1 प्रस्तावना

17 वीं शताब्दी में एक डच मानवतावादी ने, जिसका नाम सिलारियस था, विश्व इतिहास को तीन कालों में बांटा था, प्राचीन, मध्य और आधुनिक। तब से इस विभाजन को माना जाता रहा है। यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी एक युग का अंत और दूसरे युग का आरम्भ किसी एक तिथि को नहीं होता, वह तो एक प्रक्रिया होती है जो धीरे-धीरे चलती रहती है। इस प्रकार का काल-विभाजन केवल सुविधा की दृष्टि से किया जाता है।

इस प्रकार का काल-विभाजन एक सामान्य व्यक्ति की इस विचारधारा से मेल खाता है कि हमारी पृथ्वी ने केवल दो प्रगति काल देखे, हैं, एक तो युनानी और रोमन सभ्यता और दूसरा आधुनिक खोजों का समय। इन दो कालों के बीच का समय मध्यकालीन युग था, जिसके बारे में गलत धारणा है कि उस समय का मानव अज्ञान और अन्ध-विश्वास से घिरा हुआ था। "मध्यकालीन" शब्द को प्रतिक्रियावाद से जोड़ दिया गया है। परन्तु आधुनिक सुधारवादी विचारक को आश्चर्य होता है जब वह देखता है कि उसके आधुनिक विचार बहुत से मध्यकालीन विचारकों के विचारों से मिलते-जुलते हैं।

इतिहासकार जे. ई. स्वेन ने मध्यकालीन सभ्यता के महत्व को समझाते हुए कहा है कि मध्यकालीन युग का मुख्य उद्देश्य मानव-और-समाज में एकरूपता और तारतम्य पैदा करना था। उस काल का मानव किसी एक समुदाय का सदस्य था, अपनी इच्छा से नहीं अपितु ईश्वर के हस्तक्षेप के कारण, और वह उसे बदल भी नहीं सकता था। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक सभी क्षेत्रों में एकता उस समय का आदर्श था। सभी संस्थाओं में सता के प्रति सत्कार और केन्द्रीयकरण की भावना विद्यमान थी। विचारों की भिन्नता के लिए कोई स्थान नहीं था।

मध्यकालीन युग को आधुनिक इतिहास की आधारशिला कह सकते हैं। इसी युग में बाइजेनटाइन सभ्यता का विकास हुआ और पूर्व की सभ्यता पश्चिम की तरफ गई, जहां उसे एक नया जीवन मिला, जो कि पुनर्जागरण काल में पुष्पित हुआ। हमारा धर्म, दर्शन, शिक्षा, विज्ञान, भाषा, कला और शासन यह सब मध्यकालीन युग से पैदा हुए जिसमें एक लम्बी विकास की प्रक्रिया थी।

इस लेख में हमारा उद्देश्य टर्की (जिसे तुर्की भी कहा जाता है) के मध्यकालीन काल में उसकी राजनीति, अर्थव्यवस्था और सामाजिक ढ़ाचे का अध्ययन करना है। जिस समय अरब का साम्राज्य पतन और विभाजन की और उन्मुख होने लगता है तो दसवीं शताब्दी में अनिश्चतता का वातावरण पनपने लगता है। इस समय मध्य एशिया के टर्क (तुर्क लोग) मुस्लिम सभ्यता को एक नया जीवन प्रदान करते हैं। टर्क और मंगोल एक ही कबीले से सम्बन्धित थे पर इनमें टर्क अरब सभ्यता के सम्पर्क में आये। इन टर्क कबीलों में सबसे अधिक प्रगतिशील सेलजुक थे जिन्होंने

इस्लाम को उत्साह और जोश के साथ कबूल किया और इस्लाम के जबरदस्त प्रचारक बने। जबकि अरब शान्ति की कलाओं का विकास कर रहे थे, तुर्क इस्लाम की शक्ति का विकास कर रहे थे।

4.2 टर्की का राजनीतिक विकास और प्रारूप

इतिहासकार जे. एम. रोबर्टस ने टर्की के ऐतिहासिक स्रोतो की कमी के बारे में कहा है कि टर्की का इतिहास पंद्रहवीं शताब्दी के पूर्व कठिनता से मिल पाता है। ऐतिहासिक सामग्री के लिए हमें दूसरे लोगों के द्वारा दी गई सामग्री पर निर्भर होना पड़ता है। जहां तक पुरातत्व सामग्री का प्रश्न है, वह भी पूर्ण मात्रा में नहीं मिलती। लेकिन इतना निश्चत है कि एशिया में एक कबीले में राजनीतिक ढांचे का विकास हुआ। उस समय की चार महान सभ्यताओं को तुर्की खानों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। यह चार सभ्यतायें थी, चीन, भारत, बाइज़ेनटाइन और ईरान। इन तुर्की खानों ने उस सम्पर्क से बहुत कुछ सीखा। तुर्की ने लिखने की कला सीखी। पहला तुर्की अभिलेख आठवीं शताब्दी का मिलता है।

तुर्की गुलामों का मेमेलूक्स ने खलीफाओं की सेनाओं में अपनी सेवायें दी थी। लेकिन दसवीं शताब्दी में तुर्की लोग स्वयं अपने राज्य के लिये निर्माण के लिए आगे बढ़ने लगे। इन तुर्क कबीलों में सबसे आगे ओगज तुर्क थे जो पुराने खलीफाओं के राज्य में आगे बढ़कर, अपने नये राज्य बनाने लगे। इन कबीलों में एक का नाम था "सेलजुक्स"। यह इसलिये प्रसिद्ध हुये क्योंकि वह पहले से ही मुस्लिम थे। नये तुर्की राज्यों के बहुत से नेता पहले अरब-ईरान राज्यों के गुलाम सैनिक थे। ऐसा ही एक राज्य गज़नी था जिसका बहुत विस्तार हुआ था, और जो कुछ समय के लिए भारत तक फैला था। लेकिन गज़नी के यह कबीले दूसरे कबीलों के द्वारा भगा दिये गये। "ओगज" तुर्की कबीले काफी मात्रा में ईरान पहुंचे जिससे ईरान के सामाजिक तथा आर्थिक ढ़ाचे में बड़ा परिवर्तन हुआ। ओगज तुर्क पहले से मुस्लिम थे, इसलिए उन्होंने ईरान की संस्थाओं का आदर किया। उन्होंने अरबी और फारसी ग्रंथों का तुर्की में अनुवाद किया। इस प्रकार से तुर्की लोगों का अरब सभ्यता से नजदीकी संपर्क स्थापित हुआ।

11 वीं शताब्दी के आरम्भ में "सेलजुक्स" ने ओक्सस नदी को पार किया। इसके फलस्वरूप दूसरे तुर्की साम्राज्य का निर्माण हुआ जो कि 1194 तक चला और अनातो लिया (तुर्की) में तो 1243 तक चला। सेलजुक्स पूर्वी ईरान से ईराक की ओर पहुँचे और उस पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार सेलजुक तुर्क मध्य एशिया के पहले आक्रमणकारी थे जिन्होंने ऐतिहासिक काल में ईरान के प्लेटियों से आगे बढ़कर अपना राज्य जीता। सीरिया और पेलिसटाइन पर अधिकार करने के बाद उन्होंने एशिया माइनर पर अधिकार कर लिया। यहां तक कि उन्होंने तत्कालीन बाइज़ेन्टाइन राज्य की विशाल शक्ति को उस समय की सबसे करारी हार पहुँचाई। यहा पर "सेलजुक्स" ने जो सल्तनत स्थापित की उसे "रम की सल्तनत" कहा क्योंकि उन्होंने अपने आप को रोम साम्राज्य का उत्तराधिकारी समझा। इस तरह से बाइज़ेन्टाइन साम्राज्य के "पवित्र रोमन साम्राज्य" में इस्लाम ने प्रवेश पा लिया।

इससे दो बातें सामने आयी। एक तो यह कि पश्चिम में धार्मिक जोश पैदा हुआ, और दूसरा कि एशिया माइनर तुर्कों के लिए खुल गया।

सेलजुक्स तुर्कों ने कई तरह से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भूमिका निभाई। उन्होंने एशिया माइनर को ईसाई धर्म से इस्लाम में परिवर्तित किया और धार्मिक युद्धों को भड़काया, और काफी समय तक उनका सामना भी किया। धर्मयुद्ध (क्रूसेडस) कुछ हद तक सेलजुक्स शक्ति की प्रतिक्रिया थी। तुर्क क्योंकि शायद देर से मुस्लिम बने, अरबों के मुकाबले में कम उदार थे और ईसाई यात्रियों की धार्मिक यात्रा में बाधा डालने लगे। क्रूसेडस के दूसरे कारणों में यूरोपीय शक्तियां जिम्मेवार थी। प्रथम क्रूसेड 1096-99 में हुआ। ईसाईयों की प्रथम सफलता की प्रतिक्रिया फलस्वरूप सेलजुक सेनापति ने मोसुल को जीत कर अपना केन्द्र बनाया और उत्तरी मेसोपोटामिया तथा सीरिया में नये राज्य की स्थापना की। सेलजुक तुर्कों ने 1171 में मिश्र पर अधिकार कर लिया। लीवान्त के क्षेत्र पर मुसलमानों को फिर से विजय का नायक सुल्तान सालादीन था। सालादीन की पहली विजय जेरूसलम पर 1187 में पुनः विजय प्राप्त करना थी, जिसको वजह से तीसरा क्रूसेड (1189 से 92) में हुआ। सालादीन ने एक नये वंश की स्थापना की जिसने लीवान्त, मिश्र और लाल सागर के तट पर शासन किया। इस वंश की जगह तुर्की मेमेलुक्स ने ली जो कि सालादीन के महल के रक्षक थे।

योराप में तुर्की साम्राज्य "ओटोमन्स" साम्राज्य के नाम से जाना गया। ओटोमन्स कौन थे ? "रम की सल्तनत" की समाप्ति के बाद यह तुर्कों की एक शाखा थी जो कि एक राजनीतिक ईकाई के रूप में बने रहे।

विस्तार की प्रारम्भ की अवस्थाओं में, "ओटोमन्स" तुर्की गाज़ियों के सरदार बने और इस्लाम धर्म के लिए योद्धा जिन्होंने सिकुड़ते हुए बाइज़ेन्टाइन राज्य का पूरा लाभ उठाया। उस्मान प्रथम और उसके उत्तराधिकारी और औरन (1324-60) और मुराद (1360-89) के शासन काल में ओटोमन्स ने बाइज़ेन्टाइन के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया जैसे सबसे पहले पश्चिमी अनतोलिया पर और उसके बाद दक्षिणी पूर्वी योरोप पर। वाइजिद (1389-1402)के काल में धन और शक्ति को पूरी तरह से पूर्व में अनतोलियाई तुर्की में एकत्रित कर लिया गया। ओरॅन ने 1324 में "बुरशा" पर अधिकार कर लिया।

इस अधिकार से तुर्कों की शासकीय, आर्थिक और सैनिक शक्ति का विकास हुआ। 1354 से ओरॅन के पुत्र सिलेमन ने गेलीपोली को यूरोप के मोर्चे पर अपना केन्द्र बनाया जिससे कि वह योराप की ओर बढ़ सके। ओरॅन के पुत्र मुराद प्रथम के समय में गेलीपोलो का स्थायी विजयों के लिए प्रयोग किया गया। इस समय कुसतुनतुनिया इसलिए बचा रहा क्योंकि इसकी दीवारें मोटी थी और इसकी सुरक्षात्मक प्रणाली अच्छी थी, यद्यपि इसकी सुरक्षा करने वाले कमज़ोर और असंगठित थे और दूसरे ओटोमन सेना अभी पूर्ण विकसित न थी।

मुराद की आरम्भिक विजय उत्तर में थ्रेस की तरफ थी जिससे 1361 में इड्रीनोपल पर अधिकार संभव हो सका। मुराद ने योरोप में आश्रित राज्यों का निर्माण किया। उसने प्रदेशिय शासकों को बनाये रखा जिन्होंने इसके बदले में उसको सार्वभैमिकता

स्वीकार की, उसे वार्षिक कर दिया और समय पड़ने पर सैना भी दी। इससे ओटोमन्स वेजित प्रदेशों पर बिना किसी शासकीय प्रणाली के शासन करने में सफल हुये और न उन्हें सैनिक छावनी की व्यवस्था करनी पड़ी। 1390 के अन्त तक बाइजेइद ने पूरे पश्चिमी अनातोलिया पर अधिकार कर लिया। इससे योरोप आंतकित हो गया और डेनबू नदी के दक्षिण में ओटोमन शासन निश्चित हो गया तथा मुस्लिम दुनिया में वाजिद की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई कि काहिरा के खलिफा ने उसे सुल्तान की पदवी प्रदान की।

खलीफा के मेमुलिक स्वामियों ने, जो कि मिश्र, सीरिया और धार्मिक स्थानों के शासक थे, इसका विरोध भी किया क्योंकि वह चाहते थे कि सुल्तान का पद केवल उन्हें ही प्राप्त हो। इसी काल में तैमूर मध्य एशिया में शक्तिशाली तुर्की साम्राज्य की स्थापना कर रहा था तथा ईरान, अफगानिस्तान और मेसोपोटामिया पर अधिकार करने के साथ, उसने 1398 में भारत पर भी आक्रमण किया। तैमूर को डर था उसके राज्य के पश्चिम में "ओटोमन" की शक्ति उसके विस्तार को रोक सकती है। वाइजिद को 1402 में तैमूर ने अनकारा के युद्ध में पराजित किया। यही नहीं वह बन्दी बना लिया गया और एक ही वर्ष में उसकी मृत्यु हो गयी।

मैमूर तथा मुराद द्वितीय के समय में (1421-51) ओटोमन राज्य के विस्तार का नया युग शुरू हुआ। 1422-23 में मुराद ने बाल्कान विरोध का दमन किया और कुसतुनतुनिया को घेर लिया और यह घेरा तभी हटा जब कि बाइज्रेन्टाइन ने उसे कर के रूप में अपार धन दिया। इसके पश्चात् उसने अनातोलिया में ओटोमन शासन को स्थापित किया। इसके पश्चात् मुराद ने 1423-30 में वेनिस के विरूद्ध प्रथम ओटोमन युद्ध का श्री गणेश किया। वेनिस अभी तक सुल्तानों के साथ मैत्रीपूर्ण संबन्ध रखे हुऐ था क्योंकि वह ओटोमन प्रदेशों में व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रखना चाहता था। और साथ ही वह काले सागर से भी सम्बन्ध बनाये रखना चाहता था।

मुराद को तुर्क सरदारों ने गद्दी पर बिठाया था। इन तुर्क सरदारों की शक्ति को सीमित करने के लिए योरोप और अनातोलिया में एक व्यवस्था की आवश्यकता थी। इसके लिए उसने अपनी सेना में बहुत से तुर्की समुदायों को स्थान दिया। इन समुदायों में अधिकतर ईसाई गुलाम तथा इस्लाम धर्म में प्रवेश पाने वाले होते थे। इस प्रकार से बनी नई सेना जाननेसरी (Jannisary) सेना कहलाती थी। इस सेना को शक्तिशाली बनाने के लिए मुराद ने अपने विजित प्रदेशों को इसके सदस्यों में बांटा। यही नहीं बाल्कान प्रदेशों से ईसाई युवकों को इस्लाम धर्म में लेकर उन्हें सुल्तान की जीवन पर्यन्त सेना में लिया गया।

1444 में टर्की ने वारना में विजय प्राप्त की जिससे योरोप का क्रूसेड युद्ध समाप्ति की ओर अग्रसर हुआ। जिस समय 1451 में मुराद की मृत्यु हुई, डानूब सीमा पर टर्की सफल हो चुके थे। और ऐसा लगता था कि ओटोमन साम्राज्य योरोप में बना रहेगा। सुल्तान मेमूद द्वितीय के शासन काल 1451-81 में ओटोमन साम्राज्य नई विजयों का पूर्ण लाभ उठाकर शक्तिशाली बनना चाहता था। बारना की विजय के बाद उनका पहला लक्ष्य था कुसतुनतुनिया। मेमूद तथा उसके समर्थकों की नजर

में ओटोमन साम्राज्य अपनी पूर्णता को तभी प्राप्त कर सकता था जबकि वह शासन और संस्कृति के केन्द्र कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर ले।

1453 में कुस्तुनतुनिया का घेरा और उस पर अधिकार ओटोमन साम्राज्य की एक महान उपलब्धि थी। कुस्तुनतुनिया को ओटोमन साम्राज्य की नई राजधानी इस्तानबुल में बदला गया। इस विजय से मेमूद द्वितीय मुस्लिम दुनिया का सबसे प्रसिद्ध शासक बन गया, यद्यपि पुराने खलीफा का राज्य अभी भी मिश्र के मेमुलिक्स और ईरान में तैमूर के उत्तराधिकारियों के हाथ में था। कुस्तुनतुनिया पर अधिकार करने के बाद मेमूद न केवल इस्लाम और तुर्को का स्वामी बनना चाहता था बल्कि वह ईसाई दुनिया पर भी अधिकार करना चाहता था। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मेमूद द्वितीय ने सत्ता के कई आधारों का विकास किया।

आंतरिक रूप से उसका मुख्य उद्देश्य था "इस्तानबुल" को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक केन्द्र में बदलना। इसके लिए उसने उस नगर की आबादी बढ़ायी। आबादी बढ़ाने के लिए इस नगर के नागरिकों के अलावा साम्राज्य के अन्य तत्वों को मिलाया गया जिससे वह सब आपस में एकमय हो सके। इस प्रयास से उसका साम्राज्य एक पूर्ण ईकाई में बदल सका। राजधानी में रहने के लिए नागरिकों की सुविधा में विकास किया गया। उनको करों की छुट दी गई। जिससे कारीगर और बुद्धिजीवी वर्ग पनप सके। मुख्य धार्मिक समुदायों को अपने नेताओं की देख-रेख में संगठित होने का अवसर प्रदान किया गया। इन धार्मिक समुदायों को सुल्तान की देख-रेख में अपने कानून, रिवाज, और भाषा विकसित करने के अवसर भी प्रदान किये।

"इस्तानबुल" के व्यापार और उद्योगों के विकास का विशेष प्रयन्त किया गया। इससे यूरोप से व्यापारियों और कारीगरों को सुविधायें प्रदान करके आंमत्रित किया गया। मेमूद ने अपना अधिक समय यूरोप तथा एशिया में अपने साम्राज्य के विकास के लिया लगाया जिससे उसे विश्व नेतृत्व प्राप्त हो सके। उसने वास्तव में अनातोलिया और दक्षिणी पूर्व यूरोप में ओटोमन शासन की आधार शिला स्थापित की जो कि अगली चार शताब्दियों तक बनी रही।

एक बड़े साम्राज्य को जीतने के साथ-साथ मेमूद ने उसको संगठित भी किया। संगठन के साथ उसने उन शासकीय, धार्मिक और कानूनी संस्थाओं को एक निश्चित रूप दिया और उन्हें कानून के रूप में कानून नामा के नाम से मान्यता दी। इस प्रकार की संस्थायें पिछली शताब्दी से चली आ रही थी। यह सब प्रक्रिया 16 वीं शताब्दी के मध्य काल तक पूरी हुई।

यह पूर्ण रूप से नहीं कहा जा सकता कि मेमूद अपने साम्राज्य की आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं को स्थापित करने में पूर्णतया सफल हुआ। मेमूद एक समुदाय को दूसरे समुदाय के साथ भिड़ा कर अपनी सत्ता और शक्ति को बनाये रखने में सफल रहा और इस तरह से विजय यात्रा रखी। 1459 में सर्विया पर आक्रमण किया गया।

इसी वर्ष तुर्कों ने पेलोपोनिस (युनानी क्षेत्र) पर आधिकार कर लिया। दो वर्ष के बाद उन्होंने बोशिना और हरजोगोविना पर भी अधिकार कर लिया। अगला कदम अलबानिया पर था। 1480 में उन्होंने इटली के बन्दरगाह ओटरेन्टो पर अपना अधिकार स्थापित किया। 1517 में सीरिया और मिश्र पर अधिकार कर लिया गया। 1526 में उन्होंने हंगरी के शासक की सेना को ध्वस्थ कर दिया। इस हार को आज भी हंगरी के इतिहास में काले दिन के रूप में याद किया जाता है। तीन वर्ष बाद उन्होंने वियाना को घेर लिया। 1571 में साइप्रस भी उनके अधिकार में आ गया। इस समय तक ओटोमन टुर्की राज्य योरोप के कई भागों में सशक्त रूप में स्थापित हो चुके थे।

4.3 टर्की की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था

4.3.1 समाज का स्वरूपः

ओटोमन राज्य पहले कबीले नेता थे जो बाद में सेल्जुक के नेतृत्व में सीमाओं पर राजकुमार और गाजी नेता बन गये। यह प्रक्रिया 13 वीं और 14 वीं शताब्दी में चलती रही। बरसा पर अधिकार करने के बाद "ओरॅन" ने अपने आप को अपने सार्वभोम शासकों से अलग स्वतन्त्र घोषित कर दिया और बेग की उपाधि धारण की जो कि उसके उत्तराधिकारी भी अपनाते रहे। जब तक कि बाइजिद प्रथम को सुल्तान की उपाधि मिली। यह उपाधि उसे ईसाई धर्म-योद्धा अर्थात क्रुसेडरस को निकोपाली 1396 में हराने के उपलक्ष में काहिरा के अबासिद खलीफा ने प्रदान की। इस काल तक आते-आते खलीफा अब केवल अपनी शक्ति की प्रतिछाया रह गया था।

जहां तुर्की कबीले के कानून और रिवाज प्रचलित थे, वहां मुस्लिम कानून का कोई प्रभाव नहीं था। ओटोमन सरदार विजित प्रदेशों से कर वसूल करते थे और इन्हें यह अधिकार था कि वह अपनी अधिकृत भूमि से कर वसूल कर सके। बेग अन्य सरदारों की तुलना में एक ही लाभ उठा सकता था। कबीले का नेता होने के नाते उसे पेनिक का अधिकार दिया गया। इस अधिकर के अनुसार वह अन्य सरदारो की तुलना में कर का पांचवा हिस्सा अधिक वसूल करता था। क्योंकि बेग अपनी शक्ति और वित्त के लिए अपने सरदारों पर निर्भर करता था, इसलिए उसकी शक्ति सीमित थी।

विकसित होता हुआ ओटोमन राज्य तुर्की साम्राज्य के कबीले रिवाजों से प्रभावित था जो कि मध्य एशिया में पनपे थे। विशेष कर यह रिवाज सैनिक संगठन और सैनिक प्रणाली में अपनाये गये। ओटोमन राज्य महान मुस्लिम सभ्यता के सिद्धान्तों से भी प्रभावित हुआ जो कि अब्बासिद्ध काल में पनपे और जो सेल्जुक तुर्कों के माध्यम से ओटोमन साम्राज्य को प्राप्त हुए। विशेषतोर से कट्टर इस्लाम के सिद्धान्तों को शासन, धर्म, कानून और शिक्षा के क्षेत्र में अपनाया गया।

जहां तक शाही दरबार, केन्द्रीय आर्थिक ढ़ाचे और कर तथा शासकीय व्यवस्था का प्रश्न था, ओटोमन शासक बाइज़ेन्टाइन सभ्यता से प्रभावित हुए, कुछ हद तक सर्बिया और बल्गेरिया साम्राज्य से वह प्रभावित हुए। 14 वीं शताब्दी में ईसाई प्रभाव

का कारण था ओटोमन और ईसाई राजकीय दरबारों के मेत्रीपूर्ण सम्बन्ध। यूनानी और सर्बियन भाषाओं ने ओटोमन राजकीय दरबार के जीवन को प्रभावित किया और कुछ हद तक शासन व्यवस्था को भी प्रभावित किया।

4.3.2 सामाजिक वर्गीकरणः

ओटोमन साम्राज्य में मध्य काल में समाज तथा सरकार में जो संस्थायें स्थापित हुई वह आधुनिक काल तक बनी रही। ओटोमन समाज में दो स्पष्ट विभाजन थे-1- शासक वर्ग जिसमें कम संख्या में शासकीय समुदाय आता था, 2- शासित वर्ग जिसमें अधिकांश समाज का वर्ग शामिल था। ओटोमन शासक वर्ग के लिए तीन शर्तो का होना आवश्यक था। - सुल्तान तथा उसके राज्य के प्रति वफादारी 2- मुस्लिम धर्म को मानना तथा मुस्लिम धर्म, व्यवस्था तथा विचारधारा को जीबन में अपनाना 3- ओटोमन रीति-रिवाजों, प्रणाली तथा भाषा को जानना जो कि काफी पेचीदा थे। जिस वर्ग के पास यह गुंण नहीं थे उन्हें शासित वर्ग में माना जाता था जिसे "रियाया" कहा जाता था। जो कि सुल्तान के संरक्षण में रहती थी। ओटोमन शासक वर्ग के सदस्य सुल्तान के गुलाम समझे जाते थे और इस तरह से वह अपने स्वामी के सामाजिक स्तर में आ जाते थे। गुलाम की हेसियत से, उनकी सम्पति तथा उनका जीवन सुल्तान पर निर्भर करता था। और वह उनके साथ जैसा व्यवहार चाहता था कर सकता था। उनका आधारभूत कार्य था कि वह राज्य के इस्लामी स्वरूप को कायम रखे और साम्राज्य का शासन तथा सुरक्षा करें। रियाया का मुख्य कार्य था कि वह राज्य के लिए धन संचित कर सके जिसके लिये वह खेती करे या व्यापार और उद्योग धन्धे करे। इस आय का एक भाग वह शासक वर्ग को कर के रूप में दे।

शासित वर्ग में वर्ग विभाजन धर्म पर निर्भर करता था। प्रत्येक महत्वपूर्ण वर्ग अपने आप को एक स्वतन्त्र केन्द्रीय ईकाई में संगठित करता था जिसे मिल्लत कहते थे। प्रत्येक मिल्लत का अपना कानून और अपना आन्तरिक ढ़ाचा होता था। जिसका निर्देशन एक धार्मिक नेता के द्वारा किया जाता था जो कि सुल्तान के प्रति जिम्मेवार होता था। मिल्लत् के सदस्यों के कर्तव्यों और जिम्मेवारियों के लिये भी वह सुल्तान को आश्वत करता था, विशेष तौर में करों की वसूली और राज्य की सुरक्षा के लिए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मिल्लत को बहुत से सामाजिक शासकीय कार्य करने पडते थे जो कि ओटोमन राज्य नहीं करता था। इन कार्यों में विवाह, तलाक, जन्म, मृत्यु, स्वास्थ्य, शिक्षा, आन्तरिक सुरक्षा और न्याय सम्मिलित थे। मिल्लत् व्यवस्था 500 वर्षों तक सफलता पूर्वक चलती रही। इसके द्वारा साम्राज्य के भिन्न समुदायों को अलग रखा गया और उनमें कोई संघर्ष नहीं हुआ जिससे सामाजिक ढ़ांचा सुरक्षित बना रहा और जबकि ओटोमन राज्य में कई समुदायों के लोग रहते थे।

तुर्कों के ओटोमन राज्य को केन्द्रीय रूप सुल्तान प्रदान करता था। सुल्तान ही सारी व्यवस्था का आधार था। शासक तथा शासित वर्ग उसके प्रति वफादार थे।

4.3.3 कानून व्यवस्थाः

ओटोमन समाज के संगठन और कार्य के लिए दो प्रकार की कानूनी व्यवस्था प्रथलित थी। एक थी 'शरियत' अर्थात धार्मिक कानून और दूसरी थी 'कानून' या

सिविल कानून। शरियत जो कि ओटोमन राज्य का आधार भूत कानून था, राज्य के राजनीतिक सामाजिक तथा नैतिक संस्थाओं और मान्यताओं को प्रभावित करता था और मुस्लिम रियाया के जीवन के सभी पहलूओं को नियन्त्रित करता था।

फिर भी सुल्तान को यह स्वतंन्त्रता थी कि वह ओटोमन समाज में समय के अनुसार परिवर्तन ला सके। वह समाज की संस्थाओं और रीति रिवाजों में भी समय के अनुसार परिवर्तन ला सकता था। यही कारण था कि ओटोमन साम्राज्य लम्बे समय तक बना रहा और यहां तक कि इसके पतन के समय भी इसी गुण के कारण कायम रहा।

औटोमन सुल्तान कभी भी इतने निरंकुश नहीं थे जैसी की आम धारणा है। यह केवल 19 वीं शताब्दी में संभव हुआ कि ओटोमन सुधारकों ने सरकार तथा समाज का केन्द्रीयकरण किया और पहले से चली आ रही स्वायत् संस्थाओं को समाप्त किया जिनकी वजह से पिछली शताब्दीयों में विकेन्द्रीयकरण रहा था।

4.3.4 मुख्य तत्कालीन संस्थाऐः

टर्की के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन को मध्य काल में समझने के लिए उपरोक्त वर्णन के अतिरिक्त उस समय की कुछ अन्य संस्थाओं को जानना भी जरूरी है।

इन संस्थाओं में सर्वप्रथम हम सुल्तान का ग्रह विभाग लेते हैं। यह विभाग सुल्तान के व्यक्तिगत और आवश्यकताओं की पूरा करने के अतिरिक्त और बहुत से कार्य भी करता था। इसमें केन्द्रीय शासन के अफसर, प्रान्तीय शासन के आला अफसर तथा केन्द्र की सेना अफसर शामिल थे।

इस सैनिक अफसरों को "जानेसारी" कहा जाता था। कभी-कभी इन सैनिक अफसरों को पोर्ट का "सिपाही" भी कहा जाता था। इस विभाग के सभी अधिकारियों को "गुलाम" का पद दिया जाता था। "गुलाम" शब्द का अर्थ होता था "सुल्तान का आदमी" न कि वह गुलाम जो कि निम्न श्रेणी का प्रतीक माना जाता है। "गुलाम" का अर्थ उस समय राज्य में आदर और अधिकारपूर्ण व्यक्ति माना जाता था।

गृह विभाग में एक आधारभूत सिद्धान्त अपनाया जाता था कि सुल्तान के गुलाम के पद पर मुस्लिम (तुर्की) रियाया को नहीं लिया जाता था। सुल्तान की मूल मुस्लिम रियाया को साम्राज्य के इस्लाम धर्म कानून और शैक्षणिक संस्थाओं पर एक मात्र नियन्त्रण दिया जाता था। परन्तु गृह विभाग में प्रवेश के लिए गैर मुस्लिम और गैर तुर्की होना जरूरी होता था। सुल्तान को इस प्रकार भर्ती के लिए बहुत से स्रोत उपलब्ध थे जैसे युद्ध के बन्दी जो कि ईसाईयों के विरूद्ध युद्ध में प्राप्त होते थे। तोफे के तोर में प्राप्त बन्दी या खरीदे हुये बन्दी या ईसाईयों से प्राप्त बच्चे जिन्हें "देवाशेर में" कहा जाता था। इन स्रोतों से प्राप्त भर्ती किये गये लोग इस्लाम को कबूल करते थे। इस्लाम कबूल करने के लिए उन पर दबाव डालने के ही तरीके प्रयोग नहीं किये जाते थे। वह स्वयं अपनी मरज़ी से भी सुल्तान की सेवा में चले जाते थे जिससे वह तरक्की कर सके।

भर्ती किये गये गुलामों में सबसे गुणवान लोगों को महल के स्कूलों में भेजा जाता था जहां पर उन्हें इस्लाम धर्म की दीक्षा दी जाती थी तथा उसके साथ-साथ युद्ध, राजनीति और शासन प्रबन्ध में प्रशिक्षण दिया जाता था। लम्बे प्रशिक्षण के बाद जब वह पूर्ण यौवन अवस्था को पहुंचते थे, उनमें सबसे गुणवान को प्रान्तों का गर्वनर नियुक्त किया जाता था जिन्हें ***सनजक-बेगी*** कहा जाता था। इनमें से कुछ, समय के साथ, गर्वनर जनरल बन जाते थे जिन्हें ***बेगलर-बेगी*** कहा जाता था, जो कि बहुत से सनजक के ऊपर शासन करते थे, और इससे भी आगे यदि किस्मत ने साथ दिया वह ***वजीर*** के पद पर पहुंच जाते थे जो कि ***दिवान*** का सदस्य होता था। यह साम्राज्य के महत्वपूर्ण कार्यो को देखते थे। राज्य का सबसे बड़ा पद-वजीर भी उनकी पहुंच में आ सकता था।

महल के स्कूलों में प्रशिक्षण प्राप्त करने वालों में कुछ ही भर्ती किये गये लोग उच्चतम पद तक पहुंच पाते थे। इन भर्ती किये गये अधिकारियों में अधिकतर न्यायालय, राज्य दरबार, केन्द्रीय प्रशासन और गृह विभाग की सेना तक ही पहुंच पाते थे।

जो युद्ध के बन्दी तथा ***देवीशरमें*** बच्चे महल के स्कूलों में प्रवेश नहीं पाते थे उन्हें राज्य के अन्य प्रदेशों में प्रशिक्षण दिया जाता था। अधिकतर इनको प्रशिक्षण एशिया माइनर में दिया जाता था। कड़े प्रशिक्षण के पश्चात इन्हें ''जानेसरीस'' का सदस्य बना दिया जाता था।

इस व्यवस्था की दो महत्वपूर्ण विशेषतायें थी।- गुलाम का पद वंशानुगत नहीं था, अपितु उन बच्चों को जो कि शाही गृह विभाग के अधिकारियों के होते थे, उन्हें इस व्यवस्था से अलग करके साम्राज्य के मुस्लिम समुदाय के साथ मिला दिया जाता था। 2- दूसरे गुलामों के कुछ अपवादों को छोड़कर निश्चत वेतन दिया जाता था। उन्हें भूमि या राज्य का कोई भाग नहीं दिया जाता था।

सुल्तान के अधिकार में गृह विभाग की सेना के अतिरिक्त और बहुत से यौद्धा वर्ग के लोग आते थे। यह घुड़सवार सुल्तान के बुलाने पर युद्ध में शामिल होते थे। सफल सैनिक बनाने के लिए उन्हें उनकी सेवा के बदले में जागीर दी जाती थी। इस जागीर को दो भागों से जाना जाता था। एक को ''किलिज'' या ''तलवार'' कहते थे और दूसरे को ''तरक्की'' कहा जाता था। सिपाही के रख-रखाव के लिए किलिज दी जाती थी जब कि तरक्की उसे उसकी लम्बी और विशेष सेवाओं के लिए दी जाती थी। हर सिपाही को अपने युद्ध के हथियार और युद्ध का सामान स्वयं रखना पड़ता था जैसे हथियार, तम्बू, माल ढ़ोने वाले जानवर आदि। सिपाही का अपनी भूमि पर पूर्ण अधिकार नहीं होता था। कानून की नजर में उसकी भूमि राज्य की भूमि होती थी।

यह स्पष्ट था कि युद्ध, राजनीति, और शासन के क्षेत्र में ओटोमन राज्य में काफी शक्ति और विशेषाधिकार ''गुलाम'' या ''गिलमन'' के हाथ में थे इन्हें सुल्तान के आदमी कहा जाता था।

4.4 आर्थिक व्यवस्थाः

ओटोमन साम्राज्य का आर्थिक क्षेत्र में आधार चांदी का सिक्का होता था। राज्य की आय और व्यय इस सिक्के में ही आंकी जाती थी। अन्य यूरोप के राष्ट्रों के तरह ओटोमन शासकों ने भी सोने और चांदी की कमी को महसूस किया। बाद के दिनों में यह कभी इतनी बढ़ी कि चांदी पर आधारित अर्थ व्यवस्था को खतरा पैदा हो गया। इस संकट का सामना करने के लिए सुल्तान ने चांदी की खानों को अपने नियंत्रण में ले लिया तथा सिक्के के आयात को प्रेरित किया और निर्यात पर रोक लगाई। राज्य के उन आर्थिक कार्यों को बढ़ावा दिया गया जिनमें नकद की जगह काइडं की आवश्यकता पढ़ती थी।

बाद में टर्की को इन सुधारों के कारण मुद्रा स्फिति का सामना करना पड़ा। इस समय दामों की क्रान्ति का कारण अमरीका की चांदी समझी जाती थी जो यूरोप के राष्ट्रो को प्रभावित कर रही थी। चांदी की अधिक मात्रा में उपलब्धि के कारण मुद्रास्पीथी बढ़ी। चांदी अमरीका से स्पेन और वहां से जनेवा होती हुई ओटोमन साम्राज्य में पहुंच गई। जैसे जैसे चांदी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से पूर्व की ओर बहने लगी, चांदी की बाढ़ के कारण हर राष्ट्र में सिक्के का अवमुल्यन हुआ।

इस चांदी की वृद्धि के साथ आबादी की बढ़ोतरी भी आर्थिक समस्या का एक मुख्य कारण था। ओटोमन साम्राज्य की आबादी लगातार बढ़ रही थी विशेष रूप से एशिया माइनर में। ओटोमन साम्राज्य के उन सब वर्गों पर मुद्रास्पीथी का असर हो रहा था जिनकी आमदनी निश्चित थी।

9

राज्य के शासकीय और धार्मिक सेवाओं में कार्य करने वाले अधिकारी तथा कर्मचारी, अपनी निश्चत आय से असंतुष्ठ होकर भ्रष्टाचार का सहारा लेने लगे। शाही गृह विभाग के सैनिकों में भी बेचेनी फैल गई। दामों की क्रान्ति ने सिपाही को भी प्रभावित किया। किसान भी इससे प्रभावित हुए वह अपने खेत छोड़कर भाग रहे थे। साम्राज्य की आबादी बढ़ने के साथ खेती की भूमि पर उसका दबाव पड़ा। इससे एक ऐसा समुदाय पैदा हुआ जो कि खेती की भूमि से हट गया। इनमें से कुछ नगरों की ओर चले गये।

टर्की का मध्यकालीन इतिहास आधुनिक इतिहास के विद्यार्थी के लिए आश्चर्य और प्रेरणा का विषय है। ओटोमन साम्राज्य ने 600 वर्षों की शानदार मंजिल तय की। यह साम्राज्य सुलेमान शानदार 1520-66 के समय में अपनी सत्ता और शासन की चरम सीमा पर था। इसका अंत केवल 1922 में हुआ जब टर्की को गणतंत्र घोषित किया गया। ओटोमन साम्राज्य जो अनातोलिया में केन्द्रीत था, अपने ऐतिहासिक विकास में अपने विस्तार में बदलता रहा। अपनी चरम सीमा पर इस साम्राज्य में आधुनिक अल्बानिया, युनान, बल्गेरिया, युगोस्लाविया, रोमानिया, हंगरी और रूस के कुछ भाग, ईराक सीरिया, पेलिस्टाइन, मिश्र, अलजीरिया और अरब दुनिया के कुछ क्षेत्र सम्मिलित थे।

4.5 सारांश-

मध्यकालीन युग को आधुनिक इतिहास की आधारशिला कह सकते हैं। इसी युग में बाइज़ेनटाइन सभ्यता का विकास हुआ और पूर्व की सभ्यता पश्चिम की तरफ गई। जहाँ उसे एक नया जीवन मिला जो कि पुनजार्गरण काल में पुष्पित हुआ। हमारा धर्म, दर्शन, शिक्षा, विज्ञान, भाषा, कला और शासन- यह सब मध्यकालीन युग से पैदा हुए जिसमें एक लम्बी विकास की प्रक्रिया थी।

दसवीं शताब्दी में अनिश्चतता का वातावरण था। इस समय मध्य एशिया के तुर्कों ने मुस्लिम सभ्यता को एक नया जीवन प्रदान किया। यह 'तुर्क' अरब सभ्यता के सम्पर्क में आये। जिस समय अरब सभ्यता शान्ति की कलाओं का विकास कर रही थी, तुर्क इस्लाम की शक्ति विकास कर रहे थे। इन तुर्क कबीलों में "सेलजुक्स" सबसे महत्वपूर्ण थे। सेलजुक्स तुर्कों ने कई तरह से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भूमिका निभाई। उन्होंने एशिया माइनर को ईसाई धर्म से इस्लाम में परिवर्तित किया। यूरोप में तुर्क "ओटोमन्स" कहलाये। ओटोमन्स तुर्कों में "मुराद" नाम के शासक ने यूरोप में आश्रित राज्यों का निर्माण किया। 1453 में कुसतुनतुकिया पर अधिकार ओटोमन साम्राज्य की एक महान उपलब्धि थी।

ओटोमन साम्राज्य में मध्यकाल में समाज तथा सरकार में जो संस्थायें स्थापित हुई वह आधुनिक काल तक बनी रही। सुल्तान, शासक वर्ग तथा रियाया समाज के महत्वपूर्ण अंग थे। ओटोमन राज्य का केन्द्रीय जोड़ने वाला बिन्दू सुल्तान था। ओटोमन साम्राज्य का आर्थिक क्षेत्र में चांदी का सिक्का उजागार था। इस साम्राज्य का अन्त 1922 ई0 में हुआ, और ततपश्चात् कमाल अतातुर्क, जिन्हें मुस्तफा कमाल पाशा के नाम से भी जाना जाता है, ने एक आधुनिक तुर्की राष्ट्र का निर्माण कार्य आरम्भ किया।

4.6 अभ्यास कार्य-

(1) मुस्लिम सभ्यता को तुर्कों की क्या देन थी? यह अरबों से किस प्रकार भिन्न थी ?

(2) यूरोप में "ओटोमन्स" तुर्कों ने अपने साम्राज्य का कैसे विकास किया? विस्तार की इस प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।

(3) मध्यकाल में "ओटोमन्स" साम्राज्य की सामाजिक संस्थाओं का वर्णन करते हुए बताइये कि सुल्तान का उसमें क्या स्थान था ?

(4) ओटोमन्स साम्राज्य के आर्थिक ढ़ाचे का वर्णन कीजिये।

4.7 संदर्भ ग्रन्थः

(1) A History of World Civilization : J.E. Swain

(2) History of the World : J.M. Robeirts, (Pelican Publication)

(3) Western Civilizations : Edward Burns.

(4) विश्व का इतिहास नैथेनिडयल प्लैट

(5) The Age of Reason begins : Will and Ariel Durant

(6) The New Cambridge Modern History Vol. III: Edited by R.B. Wernhams

(7) Short History of Saracens : Ameer Ali (Macmillan Publication)

(8) Notes on European History Vol. II : Edwards.

इकाई- 5
मध्यकालीन यूरोपीय समाज का पतन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सामन्तवाद में संकट

5.3 वाणिज्य एवं व्यापार का पुनरूत्थान

5.4 जहाज निर्माण एवं नौपरिवहन में तकनीकी विकास

5.5 मुद्रा एवं लेन-देन का विकास

5.6 शहरों का उद्भव

5.7 मध्यम वर्ग का उदय

5.8 किसान विद्रोह

5.9 राष्ट्र-राज्यों का उत्थान

5.10 बारूद का प्रयोग

5.11 केन्द्रीय शक्ति की स्थापना

5.12 सारांश

5.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्यः

इस यूनिट में हमारा उद्देश्य यह है कि आपको संक्षेप में इससे अवगत कराया जाय कि यूरोप मे मध्यकालीन समाज के पतन की शुरूआत कैसे हुई एवं नये समाज का उदय क्या संदेश लेकर आया। आपका इस बात से भी परिचय कराना है कि नवीन समाज का जन्म पुराने समाज की कोख से होता है इसलिए स्वभावतः एक के पतन का इतिहास दूसरे के उत्थान का इतिहास है। इस अध्याय में उन सब महत्वपूर्ण तत्वों का अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा जिनके कारण से यूरोपीय मध्यकालीन समाज का आधुनिक युग में रूपान्तरण सम्भव हो सका। इस यूनिट के अध्ययन के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे कि-

— मध्यकालीन यूरोपीय समाज के पतन की प्रक्रिया कब और कैसे हुई ?

— वे तत्व जो मध्यकालीन समाज के पतन के लिए उत्तरदायी थे।

- मध्यकालीन समाज में विकसित हो रही प्रवृत्तियां जो समान्ती समाज की विरोधी थी।

— नए समाज का उद्भव।

5.1 प्रस्तावनाः

पांचवी शती में पश्चिमी यूरोप में जिन राज्यों की स्थापना की गई थी वे अभी भी अपने भूमध्य-सागरीय चरित्र को संजोए हुए थे। इस समुद्र के इर्द-गिर्द सम्पूर्ण प्राचीन सभ्यताएं पनपीं एवं दूर-दूर तक अपने विचारों एवं व्यापार को फैलाया। वास्तव में यह रोमन साम्राज्य का केन्द्र बन गया था। सातवीं शताब्दी के मध्य इस्लाम के आकस्मिक प्रवेश एवं उसकी विजयों ने सारी परिस्थितियों को परिवर्तित कर दिया। परिणामतः पश्चातवर्ती ऐतिहासिक धाराओं को उन्होंने गहराई से प्रभावित किया। भूमध्य सागर, जो अब तक पूर्व एवं पश्चिम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था, एक बाधा बन गया था। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही यूरोपीय व्यापार का पतन प्रारम्भ हो गया था एवं सम्पूर्ण आर्थिक परिघटनाओं ने बगदाद की ओर मुंह मोड़ लिया था।

आठवीं शती के ऐतिहासिक दौर में व्यापार की रूकावट के कारण सम्पूर्ण गतिविधियों में एक ठहराव आया। परिणामतः व्यापारियों की संख्या पर इसका दुष्प्रभाव पड़ा। मुद्रा संकुचन एवं शहरी जीवन में बिखराव आया।

यह स्पष्ट है कि आठवीं सदी के अन्त तक पश्चिमी यूरोप में ग्रामीणीकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो गई। कृषि मुख्य व्यवसाय बन गई एवं व्यक्ति की सम्पदा का मानदण्ड सिर्फ भूमि रह गई। सम्राट् से लेकर अर्ध-दास तक सभी वर्ग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर भूमि पर निर्भर करने लगे। चल सम्पत्ति की अब आर्थिक जीवन में भूमिका समाप्त हो गई एवं भूमि सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गई।

अब सेना का संगठन एवं सैनिकों की भर्ती जागीरों के धारकों द्वारा की जाने लगी। भू-स्वामी नाईट्स को रखते थे जो कि शस्त्रधारी होते थे। इसकी वजह से राजा की प्रभुसत्ता खतरे में पड़ गई। सामन्तवादी प्रवृत्तियों का वर्चस्व स्थापित होने लगा। प्रत्येक भू-स्वामी ने अपनी स्वतन्त्रता का दावा करना प्रारम्भ कर दिया एवं सत्ता का पूर्णतः विकेन्द्रीकरण हो गया।

नवीं शती से सम्पूर्ण पश्चिमी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था अपने ही भीतर बन्द होकर सिकुड़ गई। वस्तुओं का विनिमय एवं आवागमन बिल्कुल ठप्प होकर रह गया। इतिहासकारों ने इन परिस्थितियों को 'बन्द ग्रामीण अर्थव्यवस्था'' की संज्ञा दी है।

मध्यकालीन समाज में चर्च की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह एक ऐसी संस्था थी जिसका प्रभाव सम्पूर्ण ईसाई संसार पर था। इसकी जड़े प्राचीन एवं मजबूत थीं। यह एक धार्मिक युग था इसलिए चर्च भी एक पारलौकिक शक्ति थी लेकिन इसके अतिरिक्त उसकी जबरदस्त भौतिक शक्ति भी थी। उसके पास न केवल विशाल सम्पदा थी, बल्कि वह एक बड़ा भू-स्वामी भी था। इस तरह चर्च न केवल इस

युग का एक महान नैतिक अधिकारी था बल्कि वह एक महान आर्थिक शक्ति भी था।

धीरे-धीरे सामन्ती युग गुजर गया। इसकी विशिष्टताएं इतिहास में खो गई एवं पुरानी संस्थाओं के पतन की शुरूआत हो गई। सामन्तवाद अपना वर्चस्व खोने लगा। धर्म युद्धों का अन्त हो गया। तेरहवीं सदी के मध्य तक ऐसा बहुत कम शेष रह गया था जो मध्ययुगीन था। यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं था। इतिहास के अधिकांश कालों में संस्थाओं का उत्थान एवं पतन साथ-साथ ही होता है। यह युग भी इसका अपवाद नहीं था। मध्य तेरहवीं शताब्दी के पश्चात् आने वाले एक सौ सालों तक, जैसे-जैसे पन्द्रहवीं सदी प्रगति कर रही थी, पुरानी संस्थाएं अपना महत्व खोती जा रही थीं। यूरोपीय समाज में व्यापार, उद्योग, बैंकिंग एवं उधार-व्यवस्था का आर्थिक दृष्टि से कृषि पर वर्चस्व स्थापित होता जा रहा था। शहरी जीवन एवं मध्य वर्ग का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था। निम्न वर्ग की आतुरता लगातार बढ़ती जा रही थी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में अर्ध-दासता का स्थान स्वतन्त्रता होती जा रही थी। राष्ट्रीय चेतना के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे एवं राज्यों की सीमाएं सुस्थापित होने लगी। नये राजतन्त्रों ने केन्द्रीय राजतन्त्र स्थापित करने के लिए इन परिस्थितियों का लाभ उठाया। इसी दौरान युद्ध कला में अत्यधिक विकास हुआ। चर्च निरन्तर शक्ति विहीन होते चले गए एवं अन्ततः वर्चस्व खो बैठे। नयै ज्ञान एवं विचारों को अर्जित किया गया। पन्द्रहवीं सदी के मध्य के लगभग नए युग का सूत्रपात हुआ एवं अब यूरोप के इस नए मंच पर आधुनिक इतिहास का नाटक खेला जाने वाला था।

5.2 सामन्तवाद में संकटः

सामन्तवाद के पतन एवं नए समाज के उद्भव के बारे में मुख्यतः दो विचार प्रमुख हैं जो निम्न हैं :-

सामन्ती संकट के बारे में एक तर्क यह है कि अरब आक्रमणों के पश्चात् उनका स्थान धर्मयुद्धों के रूप में ईसाई हमलों ने ले लिया। धर्मयुद्धों का एक बड़ा परिणाम यह हुआ कि पूर्व एवं पश्चिम के मध्य सम्बन्धों के रास्ते खुल गए। इसके साथ ही बायजेन्टाईन साम्राज्य का पतन हुआ एवं इटली का एक बड़े व्यापारिक केन्द्र के रूप में उत्थान हुआ। इटली ने धर्मयुद्धों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। व्यापारिक सम्बन्धों की पुर्नस्थापना से यूरोप के स्वामियों में नई रूचियों का विकास हुआ एवं नई वस्तुओं में उनकी रूचि अधिक बढ़ गई जो कि सामान की अदला बदली के द्वारा नहीं मिल सकती थी। इसलिये मुद्रा सम्बन्धों की वापसी हुई। स्वामियों ने अपनी भूमि को (Deminse) को चरागाह भूमि में परिवर्तित करना प्रारम्भ कर दिया। स्वामी की भूमि (Demense) एवं अर्धदास की भूमि (Villion) की भूमि के मध्य अन्तर समाप्त हो गया। श्रम किराये (Labour rent) का स्थान पहले अनाज एवं तत्पश्चात् नकद किराये (Cash rent) ने ले लिया। स्वामी भू-स्वामी बन गए एवं अर्धदास किरायेदार (Tenants)। स्वामी-अर्धदास सम्बन्ध भू-स्वामी-किरायेदार में परिवर्तित हो गए (हेनरी पीरेन)।

दूसरा तक ऐसे इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया है जो सामन्तवाद को जागीर (Fief) के बराबर मानते हैं। सामन्तवाद का पतन तो आवश्यक है क्योंकि जागीर

व्यवस्था एक विशेष युद्ध व्यवस्था पर निर्भर करता है जिसका प्रचलन बारूद के व्यापक प्रयोग के कारण तेजी से समाप्त होता चला गया। मध्यकालीन यूरोप में युद्ध-व्यवस्था घुड़ सवार नाईट्स पर निर्भर करती थी। डूम्सडे बुक ने नाईट्स सेवा के मामले में अमीरों के सम्पूर्ण संसाधनों की गणना की थी लेकिन उससे जाहिर हुआ कि इस व्यवस्था का प्रचलन तेजी से समाप्त होता जा रहा था। यूरोप के मैदानों में शस्त्रों से सुसज्जित नाईट्स का जब मंगोलों से मुकाबला हुआ जब वे पूर्णतः पराजित हुए। तेरहवीं सदी के लगभग यूरोपीय युद्धों में नाईट्स स्पष्टतः अपर्याप्त थे। नाईट्स पर आधारित युद्ध व्यवस्था की कमजोरी को पन्द्रहवी शताब्दी में बारूद के प्रयोग द्वारा पूरा किया गया। वह युद्ध-व्यवस्था जिसे नाईट्स व्यवस्था का स्थान लेना था वह स्थाई बन्दूकचियों एवं तोपचियों पर निर्भर करती थी। चूंकि तोपें एवं बारूद्ध अत्यधिक मंहगे थे इसलिए राजा को मुद्रा की आवश्यकता थी न कि नाईट्स सेवाओं की। तोपों के प्रयोग एवं बारूद पर एकाधिकार ने राजाओं को स्वामियों के किलों एवं ठिकानों को नष्ट करने का अवसर प्रदान किया एवं उन्होंने उच्चतर स्तर पर केन्द्रीयकरण को कार्यान्वित किया। मुद्रा की आवश्यकता ने स्वामियों पर नये कर लगाने एवं नाईट्स सेवाओं के बदले नकद मांग को बढ़ावा दिया लेकिन दूसरी तरफ सामन्ती करों के लिए किसी प्रकार की अनुमति नहीं थी। इसलिए अगर "नये राजतन्त्र" की स्थापना होनी थी तब सामन्तवादी व्यवस्था को अगर आवश्यकता हो तो बलपूर्वक समाप्त करना ही था। जैसे ही राजा ने सेवा पर आधारित आर्थिक सम्बन्धों के लिए स्वामियों पर दबाव डालना प्रारम्भ किया जिनको अर्धदास से "टिनेन्ट्स एट विल" में परिवर्तित कर दिया। यह तर्क सामन्तवाद के पतन को विशुद्ध राजनैतिक एवं सैनिक दृष्टि से देखता है। वास्तव में एक ही समय में दोनों दृष्टिकोणों से परिस्थितियों को समझा जा सकता है क्योंकि ये दोनों एक दूसरे से जुड़े हैं। व्यापार एवं वाणिज्य एवं युद्ध तकनोलोजी का प्रसार एक दूसरे से जुड़ी हुई प्रक्रियाएं हैं।

5.3 वाणिज्य एवं व्यापार का पुनरुत्थानः

मध्ययुग में व्यापार एवं वाणिज्य के लिए अगणित कठिनाईयां थीं। मुद्रा की अत्यधिक कमी ही नहीं थी बल्कि विभिन्न स्थान की मुद्राओं, तौल एवं माप में भी भिन्नता थी। इसी कारण से दूरवर्ती व्यापार में अत्यधिक कठिनाईयां एवं खतरे थे। लेकिन इन परिस्थितियों में परिवर्तन आया। व्यापार की शुरूआत हुई एवं उसमें निरन्तर तेजी आई। इन परिस्थितियों ने मध्ययुगीन समाज को बुनियादी तौर से प्रभावित करना प्रारम्भ किया।

मध्यकालीन से आधुनिक समय में संक्रमण में धन की बढोत्तरी एक बुनियादी कारण था। धन की बढोत्तरी का कारण व्यापार का प्रसार था। सभ्यता के विकास में दूरवर्ती व्यापार का अत्यधिक प्रभाव रहा है। व्यापार की यह बढोतरी सिर्फ आर्थिक ही नहीं थी। वाणिज्य ने सेतुओं का निर्माण किया जिसके माध्यम से विचार, माल एवं मनुष्यों ने यात्राएं कीं। भूमध्यसागर से व्यापारी उत्तर एवं पश्चिम के बर्बरों के लिए कलात्मक वस्तुएं, चित्र, पाण्डुलिपियां एवं आवश्यक मोटा सामान लेकर आये।

इसी प्रकार यहां का सामान सभ्य संसार में पहुंचा। व्यापार ने अलगाव को समाप्त कर दिया।

धर्मयुद्धों ने व्यापार को अत्यधिक बढ़ावा दिया। हजारों की संख्या में यूरोप के लोगों ने मुसलमानों से अपनी पवित्र भूमि छीनने के लिए उपमहाद्वीप को पार किया। अपने अभियान के दौरान पूर्व की विलासी वस्तुओं ने उन्हें आकर्षित किया। बाद में यही लोग इन वस्तुओं के सबसे बड़े खरीददार बन गए। इनकी मांगों ने इन वस्तुओं के लिए बाजार का निर्माण किया। दूसरी तरफ बढ़ती हुई जनसंख्या ने भी इन वस्तुओं की मांग को बढ़ा दिया था।

व्यापार की दृष्टि से, धर्मयुद्धों के परिणाम अत्यधिक महत्वपूर्ण थे। इन युद्धों ने व्यापारियों एवं दूसरे वर्गों को सम्पूर्ण उपमहाद्वीप में फैलने का अवसर दिया। उन्होंने मुसलमानों के हाथ से भूमध्यसागरीय व्यापारिक मार्ग छीन लिया एवं पुनः इसे पूर्व एवं पश्चिम के मध्य एक महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग बना दिया जो कि प्राचीन समय से रहा था।

ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दियों में भूमध्यसागर में व्यापार का पुर्नरुत्थान हुआ तो उत्तरी समुद्र में यह प्रथम बार सक्रिय हुआ। उत्तरी एवं बाल्टिक समुद्र का व्यापारिक केन्द्र फ्लैन्डर्स में ब्रुग्स शहर था। जिस तरह दक्षिण में वेनिस पूर्व के साथ सम्बन्ध के लिए यूरोप का माध्यम था ठीक उसी तरह ब्रुग्स रूस स्केन्निवियन संसार के साथ सम्बन्ध के लिए था। उत्तर से माल लाते हुए व्यापारी दक्षिण के उन व्यापारियों से चैम्पगने के मैदान में मिलते थे जो दक्षिण से एल्पस को पार करके आते थे। इन मिलन स्थलों पर मेले लगते थे जिनमें महत्वपूर्ण स्थान थे- प्रोविन्स, बरसुर ओबे एवं ट्रोयस।

यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि बारहवीं सदी के पश्चात् किस प्रकार व्यापार के विकास ने मध्ययुगीन आत्मनिर्भर प्राकृतिक अर्थव्यवस्था को मुद्रा अर्थ व्यवस्था में परिवर्तित कर दिया। यहां हम उस व्यापार की ओर इंगित करना चाहते हैं जिसके प्रसार एवं विकास ने परिवर्तन ला दिया था। इन सालों में वाणिज्य यूरोप व्यापी हो गया था ठीक एक शताब्दी पश्चात् इसे संसार व्यापी बनना था।

वाणिज्य के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रगति सामुद्रिक व्यापार में हुई। धर्मयुद्धों के प्रारम्भ होने से पूर्व वेनिश, जेनोवा, पीसान एवं नारमन के व्यापारियों ने भूमध्य सागर में मुस्लिम आधिपत्य को समाप्त कर दिया था। हैनरी पीरेन ग्यारहवीं सदी में भूमध्यसागरीय जल परिवहन के लिए पश्चिमी बन्दरगाहों के फिर से खुल जाने पर बल देते हैं। वे दसवीं सती में स्केन्डिनेवियन व्यापारियों के द्वारा उत्तरी सागर एवं रूस होते हुए बाल्टिक सागर से काले समुद्र तक व्यापारिक मार्गों के विकास पर काफी बल देते हैं। उनका निष्कर्ष यह है कि इसके कारण सामन्तवाद का पतन हुआ। लेकिन मौरिस डाब इस सिद्धान्त के सख्त विरोधी हैं। उनकी मान्यता है कि यह बाह्य तत्व था इसलिए इसकी भूमिका गौण थी।

5.4 जहाज निर्माण एवं नौपरिवहन में तकनीकी विकासः

सामुद्रिक व्यापार के विकास के साथ-साथ जहाज निर्माण एवं नौपरिवहन में प्रगति हुई। तकनीकी दृष्टि से समुद्री जहाजों में काफी निपुणता आई। उसके आकार बड़े होते चले गए। उनकी गति में तेजी आई जिससे माल शीघ्रता से अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंचने लगे। अब जहाज कम से कम हवा के रुख पर निर्भर करने लगे। चुम्बकई सुई की खोज एवं कम्पास में उसके उपयोग ने नौपरिवहन में एक क्रान्ति ला दी। एस्ट्रोलेब (उच्चता मापने का एक यन्त्र) भी काम में लिया जाने लगा था। इन सब खोजों ने दूर दराज के क्षेत्रों के लिए सामुद्रिक व्यापार को सम्भव एवं आसान बना दिया।

जबकि सामुद्रिक व्यापार की तुलना में अन्तर्देशीय व्यापार की प्रगति कुछ मन्द थी क्योंकि इसके सामने खराब सड़कें एवं युद्ध, समुद्री डकैतियां एवं सामन्ती सरदारों द्वारा लगाये जाने वाले अगणित करों जैसी कठिनाईयां थीं।

5.5 मुद्रा एवं लेन-देन का विकास

विकसित हुए व्यापार की सबसे बड़ी मांग एक स्थायी मुद्रा एवं लेन-देन के विकास की थी। तेरहवीं सदी के अन्त तक परिस्थितियां बदलीं। वेनिश के चांदी के सिक्के (1192 ई0) एवं फ्लोरेन्टाईन के सोने के सिक्के (1252 ई0) के ढ़ाले जाने से इस दिशा में कुछ कार्य हुआ लेकिन कोई सुव्यवस्थित मुद्रा व्यवस्था स्थापित नहीं हो पायी।

व्यापार की बढोत्तरी के कारण धन की अत्यधिक आवश्यकता हुई। मुद्रा के लेन-देन के रास्ते में चर्च एक सबसे बड़ी बाधा थी, क्योंकि चर्च ने ब्याज कमाने पर प्रतिबन्ध लगा रखा था। चर्च का यह प्रतिबंध विकसित होते हुए व्यापार के लिए बाधा था। व्यापारियों ने इसका सामना करने का रास्ता निकाल लिया। इस तरह चर्च को अपनी शिक्षाओं को बढ़ते हुए व्यापार की आवश्यकताओं के अनुसार ढालना पड़ा। यह चर्च की शिक्षाओं पर पूंजीवादी भावना की विजय का द्योतक है।

5.6 शहरों का उद्भवः

व्यापार के विकास का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रभाव है शहरों का उद्भव। इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि इससे पूर्व मध्ययुग में शहर नहीं थे। शहर तो थे लेकिन उनका चरित्र ग्रामीण था लेकिन पश्चातवर्ती विकसित शहरों का चरित्र इससे बिल्कुल भिन्न था। नए शहरों का उद्भव उन स्थानों पर हुआ जहां व्यापार तीव्र गति से विकसित हो रहा था। परिणामतः वे स्थान शहरों के रूप में विकसित हुए जो या तो व्यापारिक मार्गों पर या किसी नदी के मुहाने पर या फिर किसी उचित स्थान पर स्थित थे।

शहरों के उत्थान के बारे में हेनरी पीरेन (ए हिस्ट्री ऑव यूरोप) की मान्यता है कि एक तरफ उत्तरी इटली एवं प्रोवेन्स के "शहरों" में तो दूसरी तरफ फ्लेमिश क्षेत्र के "बुर्गस" में प्रथम व्यापारिक बस्ती स्थापित कीं गई ये दो क्षेत्र ऐसे थे जहां पर सर्वप्रथम शहरी जीवन दृष्टिगोचर हुआ। दसवीं शती में व्यापारियों ने इन "शहरों

एवं'' बुर्गस'' में अपनी बस्तियां स्थापित की। ग्यारहवीं शताब्दी में ये बस्तियां संख्या में बंटी, व्यापक एवं सुदृढ़ हुई। ''बुर्गस'' की तरह ''शहर'' में ये व्यापारिक बस्तियां प्रमुख भूमिका निभा रही थीं।

मध्ययुगीन शहरों में व्यापारियों के उत्थान से तात्पर्य था कि इसमें बसने वाले सामन्ती लोगों के साथ संघर्ष। सामन्तवादी वातावरण नियन्त्रणों से भरा था जबकि व्यापारिक गतिविधियों के कारण से शहरों का वातावरण स्वतन्त्र था। सामन्ती स्वामी शहरी भूमि को अपनी ग्रामीण भूमि की तरह मानते थे एवं ठीक उसी प्रकार से कर उगाहना चाहते थे। लेकिन व्यापारिक गतिविधियों के विकास एवं उनकी बस्तियों के उद्भव के पश्चात् इन शहरों में सामन्ती कानून कायदों एवं रीति-रिवाजों का चलना मुश्किल हो गया।

हेनरी पीरेन लिखते हैं कि इस अपरिवर्तनशील समाज में व्यापारियों के आगमन ने सम्पूर्ण जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया एवं हर क्षेत्र में वास्तविक क्रान्ति ला दी।

व्यापारिक बस्तियों की इन विशेषताओं के साथ-साथ इनका तीव्र गति से विकास आश्चर्यजनक है। व्यापार की बढोत्तरी से तात्पर्य था कि अधिक लोगों का शहरों की ओर बसने की इच्छा से आगमन। शहरों में व्यापारियों के अभाव ने दस्तकारों को अपनी ओर आकर्षित किया। अपने माल को बेचने एवं कच्चे माल की प्राप्ति के लिए वे शहरों की ओर आकर्षित हुए। इस तरह व्यापार के साथ-साथ उद्योग ने भी अपने कदम रखने प्रारम्भ कर दिए थे। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त तक ऊन में काम करने वाले जुलाहे गांव से शहर की तरफ फ्लैन्डर्स में आने शुरू हो गए थे एवं फ्लेमिश कपड़ा व्यापार यूरोप में अत्यधिक विकासशील उद्योग बन गया था।

व्यापारियों के सामने सामन्तवादी व्यवस्था एक प्रश्न-चिह्न बने खड़ी थी। उस व्यवस्था के कानून व्यापार के विकास में एक बाधा थे। इसलिए उन्होंने अपने फैलाव एवं सामन्ती अवरोधों को दूर करने के लिए अपने आपको संगठित किया उदाहरणार्थ लन्दन एवं थोड़े समय पश्चात् जर्मनी में ''हैन्स'' नामक संगठन। सामन्तवादी व्यवस्था का तख्ता पलटने के लिए व्यापारियों ने अपने आपको ''गिल्ड्स'' में संगठित नहीं किया था बल्कि सामन्ती प्रतिबन्धों को ढ़ीला करने के लिए ऐसा किया गया था क्योंकि ये व्यापार के फैलाव में बाधा थे। इन ''गिल्ड्स'' एवं ''हैन्स'' का व्यापार पर एकाधिकार था। जो व्यापारी इन संगठनों का सदस्य नहीं होता था उसे उस शहर में व्यापार नहीं करने दिया जाता था।

जर्मनी की प्रसिद्ध हेन्सिटिक लीन विभिन्न ''हैन्सों'' की एक यूनिट थी। इसके कई स्थानों पर व्यापारिक नाके थे जिनके अपने मालगोदाम के साथ-साथ किले भी थे, जो हालैण्ड से लेकर रूस तक फैले थे। इनका इतना प्रभाव था कि इनका पूरे संसार सहित उत्तरी यूरोप के व्यापार पर वास्तव में एकाधिकार था।

5.7 मध्यम वर्ग का उदयः

व्यापार के पुनरुत्थान एवं शहरों के उद्भव के साथ-साथ एक नए समूह का प्रादुर्भाव हुआ वह था मध्यम वर्ग। इसका जन्म बिल्कुल नए वातावरण में हुआ था

एवं जो बिल्कुल नये प्रकार का जीवन जी रहा था। उसका मुख्य कार्य खरीद-फरोख्त करना था। जिस प्रकार सामन्ती समाज में सामन्ती स्वामियों, अमीरों एवं धर्म गुरुओं का वर्चस्व था। ठीक उसी प्रकार परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों में मध्यम वर्ग भी अपना स्थान बनाता जा रहा था। उसके निरन्तर बढ़ते हुए प्रभाव के पीछे एक शक्ति थी वह शक्ति थी धन की। उसे अपने धन की शक्ति के आधार पर सरकार एवं प्रशासन में महत्वपूर्ण साझेदारी थी। सामन्ती समाज में जिस प्रकार भूमि सम्पत्ति या दौलत का एक मात्र स्रोत थी। ठीक उसी प्रकार बदलती परिस्थितियों में मुद्राएं सम्पत्ति का एक नया स्रोत थी। इसी दौलत ने मध्यम वर्ग को आधार प्रदान किया एवं उसी को आधार बना कर उसने अपने लिए समाज में स्थान बनाया।

व्यापारी वर्ग का जन्म विरोधी परिस्थितियों में हो रहा था। वह तत्कालीन परिस्थितियों में बिल्कुल अजनबी था। उसकी स्थिति सामन्ती समय के अमीर से बिल्कुल भिन्न थी। अमीर एवं बहुसंख्यक किसान वर्ग में घनिष्ट सम्बन्ध थे। वे एक दूसरे से परिचित थे। जबकि व्यापारी के लिए परिस्थितियां बिल्कुल भिन्न थीं। अमीर एवं किसान दोनों ही उस पर अविश्वास करते थे। दोनों की स्थितियां भिन्न थी, एक का ग्रामीण वातावरण था एवं दूसरे का व्यापारिक। हेनरी पीरेन की मान्यता है कि व्यापारी एक गतिशील एवं सक्रिय तत्व था, देश का व्यापार उसके हाथों में था एवं परिवर्तन का वाहक था। मानव अस्तित्व के लिए उसका रहना आवश्यक नहीं था फेर भी वह वास्तव में सामाजिक प्रगति एवं सभ्यता का सन्देशवाहक था।

मध्यकालीन समाज नियन्त्रकों का युग था। प्रारम्भ में अमीर एवं धर्म गुरुओं की तरह व्यापारियों का एक संगठित वर्ग नहीं था। विभिन्न शहरों में इनके अलग समूह थे। पीरेन के अनुसार इनमें वर्ग की भावना के स्थान पर स्थानीय भावना अधिक प्रबल थी। प्रत्येक शहर अपने आप में एक अलग इकाई था लेकिन धीरे-धीरे परिस्थितियों ने इन्हें संगठित किया। इस वर्ग की प्रथम समस्या यह थी कि अगणित सामन्ती करों को किस प्रकार समाप्त किया जाये। तेजी से परिवर्तित होती हुई स्थितियों में सामन्ती कानूनों के स्थान पर नए कानून लागू किए जायें क्योंकि ये सब व्यापार की प्रगति में बाधा बन रहे थे।

इन परिस्थितियों में "व्यापारिक गिल्ड्स" के रूप में व्यापारियों ने अपने आपको संगठित किया। शीघ्र ही इसके परिणाम इनको प्राप्त होने लगे। 1370 ई0 में अब्बेवाईल के नागरिकों को फ्रांस के राजा द्वारा विभिन्न प्रकार के विशेषाधिकार दिए गये। इस आदेश के अनुसार व्यापारियों को करों में छूट मिली जो व्यापारी चाहते थे। ये सब सफलताएं "गिल्ड्स" एवं "हैन्स" को प्राप्त हुई थीं।

इस प्रकार व्यापारियों एवं शहरों ने कई प्रकार के अधिकारों को प्राप्त किया था। यह बढ़ते हुए व्यापार के महत्व का परिचायक है। शहरों में निरन्तर व्यापारियों का बढ़ता हुआ प्रभाव इस बात का प्रमाण था कि शहरों में भू-सम्पत्ति के स्थान पर धन-दौलत का वर्चस्व स्थापित होता जा रहा था। यह मध्यम वर्ग के बढ़ते हुए प्रभाव एवं वर्चस्व से प्रमाणित होता जा रहा था। इसके साथ ही सामन्ती व्यवस्था की चरमराहट भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती जा रही थी।

5.8 किसान विद्रोहः

सामन्तवादी व्यवस्था में किसान की स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आ रहा था। लेकिन धीरे-धीरे व्यापार के विकास, मुद्रा-प्रसार एवं बढ़ते हुए शहरों के कारण से आशा की किरण दिखाई देने लगी। इन सबका प्रभाव यह हुआ कि बाजार का तीव्र गति से फैलाव हुआ। बाजार के फैलाव ने ग्रामीण उत्पादकों की मांग को तीव्र गति से बढ़ा दिया।

बारहवीं सदी में पश्चिमी यूरोप के किसानों ने इस बढ़ती हुई मांग का उत्तर जंगलों एवं चरागाहों को साफ करके दिया। किसान ने अपनी मेहनत से कृषि उत्पादन में बढोतरी की एवं उस उत्पादन को बाजार में बेचना प्रारम्भ कर दिया।

लेकिन इस कृषि-भूमि विस्तार का एक अत्यन्त भयानक प्रभाव भी हुआ। इससे प्राकृतिक संतुलन बिगड़ गया। परिणामतः अकालों के भयंकर चक्र की शुरूआत हो गई। निरन्तर अकालों की चपेट में जनसंख्या का एक बहुत बड़ा हिस्सा आ गया। चरागाहों की बर्बादी का असर पशुधन पर पड़ा। पशुधन की बर्बादी से खाद का संकट उत्पन्न हो गया। परिणामतः कृषि उत्पादन में अप्रत्याशित गिरावट आई।

जनसंख्या पर सबसे भयंकर आक्रमण 1348-51 की "काली मौत" ने किया। यह एक ऐसी महामारी थी जिसमें यूरोप की चौथाई एवं कहीं-कहीं तो आधी जनसंख्या का सफाया कर दिया। इतने बड़े पैमाने पर जनसंख्या की कमी का असर श्रमिकों के अभाव के रूप में सामने आया। इसका असर मज़दूरों की मज़दूरी एवं कृषि-उत्पादों की कीमतों पर पड़ा। मजदूरों की संख्या में कमी की वजह से उनकी मज़दूरी में बढोत्तरी हो गई लेकिन दूसरी तरफ मांग की कमी के कारण कृषि उत्पादों की कीमतों में गिरावट आई। लेकिन धीरे-धीरे सिर्फ उपजाऊ भूमि पर कृषि के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई लेकिन मांग बराबर घटती रही। इन परिस्थितियों में मजदूरों को बहुत लाभ हुआ। उनकी मजदूरी तो लगातार बढ़ती रही लेकिन दूसरी तरफ कृषि उत्पादों की कीमतें कम हो रही थीं। भू-स्वामी पर इसका बुरा असर पड़ा। एक तरफ तो उसकी आय में कमी आई तो दूसरी तरफ उसे अब भोग-विलास की वस्तुओं पर अधिक खर्च करना पड़ रहा था क्योंकि बहुत बड़ी संख्या में दस्तकार मौत के मुंह में समा चुके थे।

इस शोषण का उत्तर किसान ने भाग कर एवं विद्रोह करके दिया। पन्द्रहवीं सदी के इन किसान विद्रोहों ने फ्रांस, इंग्लैण्ड, स्पेन एवं जर्मन राज्यों को हिला कर रख दिया। यद्यपि इन विद्रोहों को कुचल दिया गया लेकिन सदी के अन्त में राज्य की सामन्तवादी प्रतिक्रिया के ठण्डी पड़ जाने के कारण किसानों पर अंकुश लगाना सम्भव नहीं हो सका। अन्त में, चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं सदी के यूरोपीय सामन्तवादी अर्थ व्यवस्था के संकट ने सामन्तवाद के पतन एवं पूंजीवाद के आगमन का मार्ग प्रशस्त किया।

5.9 राष्ट्र-राज्यों का उत्थानः

पन्द्रहवीं सदी में राष्ट्र राज्यों का उत्थान सामन्तवादी व्यवस्था के लिए सबसे बड़ा खतरा बन कर सामने आया था। राज्य सीमाओं का सीमांकन अधिक स्पष्ट

होता जा रहा था। राष्ट्रीय भावना का प्रभाव सभी क्षेत्रों में सुस्पष्ट रूप से झलक रहा था। लोगों की भक्ति राष्ट्र एवं उसके सम्राट् से अधिक थी न कि किसी शहर या प्रान्त से। लोग इंग्लैण्ड, फ्रांस एवं स्पेन के नागरिक कहलाने में अधिक गौरव समझते थे।

मध्यवर्ग के उत्थान ने राष्ट्र-राज्यों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मध्ययुगीन समाज की अराजकता उनके व्यापार के लिए सबसे बड़ा खतरा थी। इसलिए वे अपने व्यापारिक लाभों के लिए सुरक्षा एवं व्यवस्था चाहते थे। इसके लिए उन्हें सहयोगी ढूंढने थे क्योंकि सामन्ती स्वामी तो उनके व्यापार के लिए बाधा थे।

शहरों में व्यापारियों ने सामन्ती स्वामियों के प्रतिबन्धों के विरुद्ध परिस्थितियां तैयार की। इसमें राजा ने उनका साथ दिया। व्यापारियों ने बदले में सम्राटों की आर्थिक सहायता की। इन सम्राटों ने एक नियमित सेना का संगठन किया। नियमित सैनिकों की भर्ती की जाने लगी एंव उन्हें नकद रोजगार दिया जाने लगा। ये सैनिक व्यावसायिक दृष्टि से सामन्ती सैनिकों से अधिक निपुण थे।

5.10 बारूद का प्रयोग

इसके अतिरिक्त सैनिक हथियारों में तकनीकी सुधारों ने भी सम्राटों की शक्ति को बढ़ा दिया। बारूद एवं तोपों के प्रयोग ने सेना की दक्षता को अधिक बढ़ा दिया। सबसे महत्वपूर्ण बात सम्राट का बारूद पर पूर्ण एकाधिकार था। इस एकाधिकार ने दुहरा कार्य किया। एक तरफ तो सम्राट को सर्वशक्तिमान बना दिया तो दूसरी तरफ सामन्ती स्वामियों की कमजोरी को पूर्णतः उजागर कर दिया। अब सामन्ती किलों का महत्व समाप्त हो गया।

5.11 केन्द्रीय शक्ति की स्थापनाः

केन्द्रीय शक्ति की स्थापना इस सदी की एक महान् उपलब्धि थी। इस केन्द्रीयकरण का लाभ व्यापारियों को अत्यधिक हुआ। सम्राट् भी अपने शक्ति के आधार को अच्छी तरह से पहचानते थे। वे जानते थे कि उनकी शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि व्यापार एवं उद्योगों का अधिक से अधिक विकास हो। इसीलिए उन्होंने व्यापार को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया। इस दौर में शहरों की एकाधिकारी प्रवृत्ति पर पूरे तौर पर अंकुश लगाया गया। आर्थिक जीवन में शहरों का स्थान फ्रांस, इंग्लैण्ड एवं स्पेन जैसे राज्यों ने ले लिया।

पैरी एन्डरसन की मान्यता है कि निरकुंश राज्यतन्त्रों ने नियमित सेंनाएं, स्थायी नौकरशाही, राष्ट्रीय कर-व्यवस्था, समान कानून एवं संगठित बाजार की शुरूआत की। ये सभी विशेषताएं मुख्यतः पूंजीवादी लगती थी। (Lineages to the Absolute State)।

किसान, दस्तकार, एवं व्यापारी सभी ने राज्यों के निर्माण का स्वागत किया क्योंकि यह सभी के लिए लाभकारी था। कर-व्यवस्था, तोल-माप एवं कानून व्यवस्था में एकरूपता कायम हुई। स्थानीयता की जगह राष्ट्रीयता ने ले ली। राष्ट्रयता की

भावना इतना प्रबल था कि वह साहित्य, कला एवं जीवन के हर क्षेत्र में प्रतिबिम्बित हो रही थी।

मध्य वर्ग के विकास के मार्ग में चर्च एक बड़ी बाधा था। सामन्तवाद के सफाये के लिए आवश्यक था कि उसके एक शक्तिवान आधार चर्च का नष्ट किया जाना प्रोटेस्टैन्ट सुधार आन्दोलन मध्य वर्ग के नेतृत्व में लड़ी गई एक ऐसी धार्मिक लड़ाई थी जो अप्रत्यक्ष रूप से सामन्तवाद पर एक करारा आक्रमण था। इसमें मध्य वर्ग को सफलता इसलिए मिली क्योंकि राष्ट्रीय राज्यों एवं चर्च के मध्य संघर्ष चल रहा था। अन्ततः इन सब परिस्थितियों ने सामन्तवाद के पतन के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

इस तरह पूंजीवाद के आगमन के साथ-साथ सामन्तवाद का पतन हुआ। सामंती स्वामियों एवं नाईट्स का सैनिक एवं राजनैतिक प्रभाव कम होता चला गया। भू-स्वामी एवं किसान के सम्बन्धों में परिवर्तन आया। गांवों में मुद्रा बड़ी तादाद में प्रयोग की जाने लगी। अर्धदास की स्थिति बदल गयी। भू-स्वामी अब मजदूरों को नकद मजदूरी पर रखते थे। इस प्रकार फ्रांसिसी टिनेन्ट "सेन्सियर" एवं अंग्रेज टिनेन्ट" "कापीहोल्डर" बन गया।

मुद्रा व्यवस्था के विकास का अर्धदास व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा। अब अर्धदास को अपनी स्थिति सुधारने के लिए इधर-उधर मांगना पड़ता था। बल्कि वह अब मुद्रा के द्वारा अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता हासिल कर सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी यूरोप में चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं सदी में अर्धदास व्यवस्था धीरे-धीरे समाप्त हो गई, लेकिन पूर्वी यूरोप में यह जारी रही।

5.12 सारांशः

इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सामन्तवादी व्यवस्था के पतन के लिए कई तत्व उत्तरदायी हैं। इसमें व्यापार के विकास, नौपरिवहन में तकनोलोजिकल प्रगति, मुद्रा एवं लेनदेन में विकास, शहरों के उद्भव, मध्यवर्ग के उत्थान, स्वामियों द्वारा किसानों का शोषण परिणामस्वरूप किसान विद्रोह एवं राज्यतन्त्रों का विकास आदि महत्वपूर्ण हैं। बारूद के प्रयोग एवं उस पर एकाधिकार ने राज्यतंत्रों को सामन्ती राज्यों के दमन का अवसर प्रदान किया। दूसरी तरफ मुद्रा सम्बन्धों की वापसी से अर्धदासों की न केवल मुक्ति का द्वार खुला बल्कि श्रम किराये के स्थान पर नकद किराये ने सम्पूर्ण परिस्थितियों को परिवर्तित कर दिया। अर्धदास किरायेदार (Tenant) व सामन्ती स्वामी भू-स्वामी बन गया। दोनों के सम्बन्ध में बुनियादी परिवर्तन आया। सामन्ती समाज के इस संकट ने नई आधुनिक व्यवस्था को जन्म दिया।

5.13 प्रश्न अभ्यास

1. यूरोप में सामन्तवाद के पतन के लिए कौन से तत्व उत्तरदायी हैं ? विस्तार से वर्णन कीजिए।

2. यूरोप में आधुनिक समाज के उत्थान की प्रक्रिया को रेखांकित कीजिए।

3. मध्यवर्ग का उत्थान यूरोपीय सामन्तवादी व्यवस्था के लिए सबसे बड़ा खतरा था। व्याख्यायित कीजिए।

4. व्यापार के विकास की प्रक्रिया सामन्तवाद के पतन की प्रक्रिया की शुरूआत थी। इस कथन के पक्ष-विपक्ष में तर्क दीजिए।

5. किसान-विद्रोहों एवं शहरों के उद्‌भव ने नए समाज के बीज बो दिए थे। व्याख्या कीजिए।

5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सी. जे. एच. हेज - मार्डन यूरोप टू 1870
2. सी. जे. एच. हेज - हिस्ट्री ऑव द मेडिवल एजे (284-1500 A.D.)
4. एडवर्ड पी चैने - द डान ऑव द न्यू एरा
5. हेनरी पीरेन- हिस्ट्री ऑव यूरोप (नौवां अध्याय)

NOTES

MAHY-101

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

एम.ए. पाठ्यक्रम
इतिहास

खण्ड-2

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 6	
यूरोप में अठारहवीं शताब्दी में कृषि व्यवस्था	3-9
इकाई 7	
अठारहवीं सदी में यूरोप में कृषक विद्रोह	10-18
इकाई 8	
नगरों व शहरों का विकास एवं यूरोप में नगरीकरण	19-26
इकाई 9	
कारखाना और श्रमजीवी वर्ग	27-35

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी. एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार,
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय
एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. के. एस. गुप्ता,
इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाडिया
विश्वविधालय, उदयपुर (राज.)

प्रो. बी. आर. ग्रोवर,
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

डा. बृजकिशोर शर्मा,
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, कोटा
खुला विश्वविधालय, कोटा (राज.)

प्रो. एस. पी. गुप्ता,
इतिहास विभाग, अलीगढ मुस्लिम
विश्वविधालय, अलीगढ (उ.प्र.)

डा. कमलेश शर्मा,
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविधालय, कोटा

प्रो. जे. पी. मिश्रा,
इतिहास विभाग, काशी हिन्दू
विश्वविधालय, वाराणसी (उ.प्र.)

डा. याकूब अलीखान,
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविधालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा.एल. पी. माथुर,
पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविधालय,
उदयपुर (राज.)

डा. राजीव लोचन,
इतिहास विभाग, पंजाब विश्वविधालय,
चण्डीगढ़ (भारत)

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. बृजकिशोर शर्मा,

विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
कोटा खुला विश्वविधालय, कोटा (राज.)

अकादमिक प्रशासनिक व्यवस्था

- डॉ. आर. वी. व्यास, कुलपति
- श्रीमती कमलेश शर्मा
- डॉ. पी.के.शर्मा, निदेशक, पा.सा.उ.एवं वि. विभाग

पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

- योगेन्द्र गोयल
  सहायक उत्पादन अधिकारी

सर्वाधिकार सुरक्षित ! इस पाठ्यक्रम का कोई भी अंश वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति प्राप्त किये बिना या मिमियोग्राफी अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करना वर्जित है।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, रावतभाटा रोड, कोटा से प्राप्त की जा सकती है।

MAHY-101/70

इकाई-6
यूरोप में अठारहवीं शताब्दी में कृषि व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 अठारहवीं सदी के पहले के युग में यूरोप में कृषि व्यवस्था

6.3 खेती के प्राचीन तरीके

6.4 अठारहवीं सदी में इंगलैण्ड में खेती के तरीकों में परिवर्तन के लिये जिम्मेवार परिस्थितियां

6.5 इंगलैण्ड में कृषि की नवीन पद्धति

6.6 अठारहवीं सदी में अन्य देशों में कृषि

6.7 इंगलैण्ड में नवीन कृषि का प्रभाव

6.8 निषकर्ष

6.9 शब्दावली

6.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.11 संदर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई मे आप अध्ययन करेंगे:

- कृषि का मानव के जीवन में महत्व
- अठारहवीं सदी के पहले के युग मे यूरोप में कृषि व्यवस्था की विशेषताऐं- सामंतवादी व्यवस्था में कृषक की दशा तथा कृषि की व्यवस्था
- कृषि के प्राचीन तरीके
- अठारहवीं शताब्दी में इंगलैंड में खेती के तरीकों मे परिवर्तन के लिये जिम्मेदार परिस्थितियाँ
- नये आविष्कार व तरीके
- अठारहवीं सदी में यूरोप के अन्य देशों में कृषि को दशा फ्रांस व जर्मनी के कुछ भागों में इंगलैंड की नवीन पध्दति का प्रभाव, शेष यूरोप में इसका अनुकरण न होने के कारण
- इंगलैंड में कृषि की नवीन पध्दति के प्रभाव - कृषि उत्पादन में वृद्धि, बढती हुई

जनसंख्या के लिये अन्न का व्यवस्था, उन्नीसवीं सदी में नवीन कृषि का विस्तार, पशुधन में वृद्धि, दुर्भिक्षों का अन्त, उध्योगों के लिये श्रमिकों की व्यवस्था, नकद फसलों का उत्पादन

6.1 प्रस्तावनाः

प्राग-ऐतिहासिक युग में कृषि का आविष्कार मानव सभ्यता के विकास में एक क्रांतिकारी कदम था। इसने मानव को स्थायी रूप से एक स्थान पर निवास करने के लिये प्रेरित किया। प्राचीन युग में यूरोप सहित विश्व के लगभग सभी भागों में कृषि कार्य ही मनुष्य का मुख्य व्यवसाय था। बालबैंक व टेलर के मत में आधुनिक युग के आरंभ में भी यूरोप के आर्थिक जीवन में कृषि मानव का मुख्य उद्यम रहा। यद्यपि आज भी खेती अधिंकाश मनुष्यों के जीवन यापनका साधन है किन्तु चार सौ साल पहले इसका महत्व आज से कहीं अधिक था।

अठारहवीं सदी में इंगलैंड मे कृषि के क्षैत्र में अनेक तकनीकी परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने कृषि उत्पाद में एक प्रकार से क्रांति ला दी। इन परिर्वतनों को समझने के लिये मध्यकालीन युग की कृषि व्यवस्था की विशेषताओं को समझना आवश्यक है।

6.2 अठारहवीं सदी के पहले के युग मे यूरोप में कृषि व्यवस्थाः

मार्क ब्लाक के मत में मध्यकालीन युग में सामंतवाद का उदय परस्पर निर्भरता के सम्बन्धों के आधार पर हुआ। सुरक्षा व अजीविका के लिये किसानों ने अपनी भूमि व संसाधन स्थानीय सांमतों को सौंप दिये। स्थनीय सांमतों नं बड़े सामतों से सुरक्षा का आश्वासन सैनिक सहायता के बदले में प्राप्त किया। बड़े सामंत नें ऐसी ही शर्त पर राजा को अपने अधिकार सौंपे। सामंतवाद के उदय और विकास के चाहे कुछ भी कारण रहे हों। इसका एक महत्वपूर्ण परिणाम कृषक का भूमि का स्वामी नहीं होना था। अतः उसमें भूमि के सुधार के प्रति उत्साह नही रहता था।

सामंतवादी व्यवस्था में कृषक की दशा दासों के समान थी। वह किसी भी हालत में अपने सांमत के चंगुल से छुटकारा नही पा सकता था। सामंतों के अधिकार असीमित थे। राज्य कार्यों, युद्धों, अथवा ऐश - आराम में व्यस्त रहनें के काराण वे खेती की उन्नति पर ध्यान नहीं देते थे।

उस समय ग्राम (Manor) व्यवस्था इस प्रकार थी। एक मेनर में सामंत या उप सामंत का गढ़ होता था जिसके चारों ओर किसानों के मकान होतें थे। ग्राम की परिधि में कृषि योग्य खेत होते थे। इन खेतों की सीमा निर्धारित नहीं की जाती थी क्योंकि इनमें सभी कृषक दास अपने सांमत के लिये सामुदायिक रूप से खेती करते थे। ऐसा करते समय उनहे सामंत या उसके प्रतिनिधि का आदेश मानना पड़ता था। आम तौर पर गांव के खेतों को दो, तीन या चार भागों में बांटा जाता था लेकिन अधिकतर तीन भाग किये जाते थे। एक भाग में गेहूं या राई, दूसरे में मक्का व अन्य फसलें बोई जाती थीं तथा तीसरे को हल चला कर खाली छोड दिया जाता था। इन खेतों के आस पास चरागाह और जंगल होते थे। चारगाहों में गावं के सभी पशु चर सकते थे, घास के मैदानों से उनके लिये चारा प्राप्त किया जाता था तथा जंगल से लकडी, घरों को बनाने के लिये फूस आदि प्राप्त किये जाते थे।

गांव में किसकी खेती की जाये और कब उसके बीज बोये जाय इसका निचय गांव (Manor) की अदालत करती थी। खेतों में कार्य करने के लिये श्रमिक उपलब्ध होते थे। इस व्यवस्था में एक किसान को व्यक्तिगत सेवाऐं, वस्तु अथवा नकद धन के माध्यम से लगाान अदा करना पड़ता था।

इस व्यवस्था के अनेक दोष थे। आम तौर पर एक किसान को दो या उससे अधिक स्थानों पर खेती के लिये छोटे छोटे खेत दिये जाते थे। इनमें खेती करने में उसका काफी समय नष्ट हो जाता था तथा उसे व्यय भी अधिक करना पड़ता था। कई बार अपने छोटे, छोटे खेतों की सीमाओं के बारे में उसका अपने पड़ौसी कृषक से विवाद चलता रहा था। वह भिन्न भिन्न खेतों में सिचाई का संतोषजनक प्रबन्ध नहीं कर सकता था। इन खेतों में वहएक ही फसल पैदा कर सकता था क्योंकि सर्दियों में ये खेत चरागाहों के रूप में उपयोग में लाये जाते थे।

6.3 खेती के प्राचीन तरीकेः

मध्य युग में खेती के तरीके उन्नत नहीं थे। एक किसान का मुख्य औजार था लकड़ी से बना हुआ हलका हल। फसल काटने के लिये उसके पास एक हँसली होती थी। अनाज को साफ करने के लिये उसे हवा में छोडा जाता था (winnowing) अथवा जमीन पर बिखेरा जाता था ताकि पशुओं को उस पर चलाया जा सके। एक टोकरी में बीज रख कर कृषक उन्हें चारों ओर बिखेरता हुआ चलता था। सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था नहीं थी। फसलों को बदल बदल कर (Rolation of Crops) नही बोया जाता था, मिट्टी की जांच भी नही होती थी। ऐसी परिस्थितियों में कृषि उत्पादन की मात्रा कम थी।

6.4 अठारहवीं सदी में इंगलैंड़ में खेती के तरीकों में परिवर्तन के लिये जिम्मेवार परिस्थितियाँः

मध्य युग के अन्त में इंगलैण्ड़ में व्यापार की उन्नति होने लगी। इस समय औषधि विज्ञान की प्रगति के कारण मृत्यु दर घटने लगी। शिशुओं की मृत्यु दर में कमी आई। फलस्वरूप इंगलैंड़ की आबादी बढ़ी लेकिन इस बढ़ती हुई जनसख्या ने अपनी आवश्यकताओं के लिये वनों और चरागाहों को तेजी से साफ करके कृषि योग्य भूमि का परिस्थितिक संतुलन बिगाड़ दिया। कृषि उत्पाद में कमी आई। दूसरी ओर मजदूरी की दर बढ़ने लगी। इन दोनों कारणों से जमींदारों को घाटा होने लगा। इस घाटे से बचने के लिये उन्होनें कृषकों से नये समझौते किये। उन्होंने कृषकों को भूमि, औजार व अन्य साधन प्रदान कर खेती के लिये भूमि देना शुरू की तथा उसके बदले में किसान से फसल का एक निश्चित भाग लेना शुरू किया। उत्तरी फ्रांस में भी इस प्रथा को अपनाया गया। इस पद्धति ने एक ओर किसानो को सामंतो की दासता से मुक्त करने का मार्ग प्रशस्त किया तो दूसरी ओर बढ़ती हुई आबादी के लिये अधिक अन्न उपजाने में मदद दी। यद्यपि सोलहवीं शताब्दी के अंत तक इंगलैंड़ में कृषक दास (serfdom) की प्रथा का अन्त बहुत बाद में हुआ। उदाहरण के तौर पर 1861 में रूस के जार एलेक्जेंडर प्रथम ने इसके लिये एक कानून पास किया।

सोलहवीं व सत्रहवीं सदी में इंगलैंड़ का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ गया तथा पूंजीपतियों ने गांवों में कृषि योग्य भूमि खरीदनी शुरू की। ऐसा करने से समाज में उनका सम्मान बढ़ता

था क्योंकि प्राचीन काल से ही इंगलैंड में भूमि का स्वामी होना गौरव की बात मानी जाती थी। ये पूंजीपति कृषि से मुनाफा कमाने की सोचने लगे। पुराने ढंग से की जाने वाली खेती से ऐसा करना संभव नही था। अतः वैज्ञानिक तरीकों और अधिक उन्नत औजारों की खोज की जाने लगी। क्योंकि केवल धनी लोगों के पास ही परीक्षण के लिये धन व अवकाश था, इसलिये प्रारंभिक उन्नति अधिकांशतः समृद्ध किसानों द्वारा की गई। इस प्रकार कृषि के क्षेत्र में पूंजी के प्रयोग से कृषि क्रांति का मार्ग प्रशस्त हो गया।

6.5 इंगलैंण्ड़ में कृषि की नवीन पद्धतिः

एनफील्ड के अनुसार उस समय हालैंड एक प्रमुख व्यापारिक व पूंजीपति देशथा। वहां पर फसलों को बदल बदल कर बोने की प्रथा को प्रयोग में लाया गया था। इंगलैंड़ ने हालैंड से इसे सीखा। जेथरो तलण लार्ड टाउनशेंड, बेकवेल, आर्थर यंग व कोक आदि ने वैज्ञानिक पद्धति से खेती करने के तरीको की खोज की। तल (1664-1740) ने पंकितयों में थोड़ी दूरी पर बीज बोने के लिये एक यंत्र बनाया। टाउनशेड (1664-1738) ने अपने खेतों में एक किस्म की फसल के बाद दूसरे किस्म की फसल बोई तथा गेहूँ, शलजम, जौ और आलू की खेती को बारी बारी से बो कर जमीन की उर्वरता बनाये रखी। आर्थर यंग (1740-1820)ने इसका प्रचार किया तथा बडे बडे फार्म बनाये। कोक ने पशुओं की संख्या बढाने के लिये प्रयत्न किया। पशुओं की संख्या में वृद्धि होने के कारण खाद अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगी। अब पहले की अपेक्षा अच्छे किस्म के धातु के हल बनाये गये। इस प्रकार के हलों मे इंगलैंड का रोजरहेम हल अधिक प्रसिद्ध है। यह हल भूमि में गहरी खुदाई करता था तथा कम समय में पहले की अपेक्षा अधिक भूमि पर चलाया जा सकता था। उत्पादित अन्न की सफाई के लिये अब पहले की अपेक्षा बेहतर तरीके अपनाये गये। भूमि की गुणवता की जाँच करके उसकी क्षमता के अनुसार फसल बोई जाने लगी।

वैज्ञानिक आधार पर नवीन प्रणाली से खेती करने के लिए छोटे खेतों के स्थान पर बडे खेत अधिक उपयुक्त थे। अतएव अब अनेक खेतों को मिला कर एक खेत बनाया गया तथा उसके चारो ओर बाड़ (Enclosure Act) लगाये गये। इंगलैंड में 1792 से 1815 तक इसके लिये 956 बाड़ नियम (Enclosures Act) पारित किये गये। एक ओर इससे लाभ यह हुआ कि बड़े फार्मों (Farms) में कृषि उत्पादन बढ़ा तो दूसरी ओर काफी संख्या में छोटे किसानों को अपनी भूमि छोड़नी पड़ी तथा वे भूमिहीन मजदूर हो गये।

6.6 उठारहवीं सदी में अन्य देशो में कृषिः

इंगलैंड मे इस नवीन पद्धति के पालन का प्रभाव फ्रांस तथा एशिया के कुछ भागों पर साधारण रूप से पड़ा। शेष यूरोप ने काफी समय तक इन्हे नहीं अपनाया।

अठारहवीं सदी के मध्य में फ्रांस की कृषि व्यवस्था का वर्णन करते हुए हार्टवेल ने लिखा है कि उस समय भी वहां पर खेतों को केवल दो या तीन भागों में विभाजित किया जाता था। दोनो तरीकों में ग्रामो के पास चरागाह व वन छोड़े जाते थे। कृषि औजार भी पहले जैसे थे धातु के मजबूत हलों का प्रयोग आरंभ नही हुआ था। थ्रेसिंग (Threshin) मशीन भी काम में नहीं लाई जाती थी। क्योंकि इंगलैंड के मुकाबले में फ्रांस में पूंजी के विकास की दर बहुत कम थी इसलिए कृषि के क्षेत्र में साधनों की उन्नति पर ध्यान नही दिया गया था। फ्रांस में बाहय

व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाये जाते थे। अतः अनाज ईधर उधर नही भेजा जाता था। इस समय तक फ्रांस में आलू की खेती को पहले से अधिक महत्व दिया जाने लगा था। इसकी खेती ऐसे चरागाहों पर की जाती थी जो अठारहवीं शताब्दी में साफ किये गये थे। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि फ्रास की कृषि पर इंगलैंड में नये तरीकों का प्रभाव बिन्कुल भी नही पड़ा था। कुछ कृषि विशेषज्ञों जिनमें डहमेल (Duhamale) पेलेटो (Palutteo) और टुबिल्ली (Tubelly) प्रमुख थे, ने इंगलैंड में अपनाये गये कृषि के आधुनिक तरीकों पर पुस्तकें लिखी अथवा उनका प्रचार किया। अठारहवीं शती के अन्त में फसलों की अदला बदली को उत्तरी फ्रांस के कुछ भागों में अपनाया गया था। इसी समय इन्हीं इलाकों में बडे फार्मो पर गन्ने की खेती आरम्भ की गई। इसके कुछ समय पहले स्पेन से अच्छी नस्ल की भेड़ें मंगाई गई। इन परिवर्तनों के होते हुए भी महान क्रांति तक फ्रांस मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान देश ही रहा जबकि इस समय तक इंगलैंड कृषि व औद्योगिक क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति कर चुका था।

प्रशिया पर भी इंगलैंड के नवीन प्रयोगों का फ्रास की अपेक्षा कुछ अधिक प्रभाव पड़ा। अलबर्ट थेयर (Albert Thaer) ने 1798 (Introduction to the knowledge of English Agriculture) नामक पुस्तक लिखी। थेयर व उसके अनुयायियों ने फसले बोने के लिये हल द्वारा भूमि की गहरी खुदाई और नवीन औजारों के प्रयोग के लिये प्रचार किया। अठारहवीं शती के अन्त के दशको में पूर्वी जर्मनी में अच्छी नस्ल की भेड़ें लाई गई, तिलहन, अच्छी घास व बिनौले उगाये गये तथा फसलों की अदला बदली (Rotation) की प्रणाली अपनाई गई। लेकिन अठारहवीं शती के अन्त तक भी जर्मनी के अन्य इलाको में नवीन कृषि को नही अपनाया गया। केवल वे फसलो को अदला बदली (Rotation) को प्रयोग में लाने लगे थे। अठारहवीं सदी के अन्त में जर्मनी के पूर्वी भागों विशेषकर साइलेशिया और सेक्सनी में भी इसे आरम्भ किया गया।

उपर्युक्त वर्णन से सपष्ट है कि अठारहवी सदी में कृषि के क्षेत्र में इंगलैंड में अभूतपूर्व उन्नति हुई तथा फ्रांस व जर्मनी के कुछ भागों पर इसका प्रभाव पड़ना आरम्भ हुआ। लेकिन इस शती के अन्त तक इटली स्पेन, रूस व पूर्वी यूरोप के अन्य देश पिछड़े ही रहे। लेंगर व उसके अन्य चार सहयोगियों ने अपनी पुस्तक (Western Civilization) की द्वितीय जिल्द में लिखा है कि वास्तव में उन्नीसवीं शती में यूरोप के अधिकाश भागों में मध्य-युग की तरह ही खेती की जाती रही। इन देशों में खेती के लिये प्रयोग में लिये जाने वाले परिवर्तनों के प्रति विरोध मुख्य रूप से दो कारणों से हुआ। ये कारण थे:-कृषकों में परम्परागत तरीकों के प्रति आस्था और नवीन तरीकों का स्थानीय परिस्थितियों के प्रति अनुकूल न होना था। इसका एक अन्य कारण यह भी था कि मनुष्य के श्रम के स्थान पर मशीनों के प्रयोग को इन देशों की सरकारों ने पसन्द नहीं किया क्योकि वे सामाजिक व सैनिक आवश्यकताओं के कारण अधिक से अधिक जनसंख्या को कृषि पर ही निर्भर रखना चाहते थे।

6.7 इंगलैंड में नवीन कृषि का प्रभाव :

(1) **कृषि उत्पादन में वृद्धिः** अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में कृषि के इन नये तरीकों से कृषि उत्पादन में काफी वृद्धि हुई।

(2) **बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये अन्न की व्यवस्थाः** इंगलैंड की जनसंख्या लगातार

बढ़ती जा रही थी। 1750 में इस देश की जनसंख्या का अनुमान 65 लाख था। जो 1801 में 90 लाख, 1831 में 190 लाख और 1851 में 180 लाख हो गई। इस बढती हुई जनसंख्या के किये अन्न की बढी हुई उपज काम मे आई। इस समय में इस जनसंख्या का एक भाग, जिसका अन्न उपजाने से कोई सम्बन्ध नही था अर्थात जो शहरों में रहता था और जिनमें से काफी मनुष्य औद्योगिक इकाईयों में कार्य करते थे, को अन्न देने में सुविधा हुई। लेकिन यहां यह बता देना उचित होगाा कि अन्न के उत्पादन की यह वृद्धि इंगलैंड की बढ़ती हुई आबादी के लिये पर्याप्त सिद्ध नही हुई।

(3) **उन्नीसवीं शताब्दी में "नवीन कृषि" का विस्तार** उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में खेतों में रसायनिक खाद देने की पद्धति का विकास हुआ। इस प्रकार के उर्वरकों से भी उपज में वृद्धि हुई। 1834 में साईरस मैककोरमिक ने फसल काटने वाली मशीन का आविष्कार किया इसके बाद लोहे का हल, पाचा (घोडे से खीचा जाने वाला हल), तकेदार हैरा (पटरा) जिससे हल चलाने के बाद भूमि के टुकड़े तोड़े जाते थे, आदि का आविष्कार हुआ। समय के साथ साथ कृषि में यंत्रो का प्रयोग बढ़ता गया। इन आविष्कारों ने कृषि को और उन्नत कर दिया।

(4) **पशुधन में वृद्धि :** अच्छे नस्लों की भेड़ों व गायों की संख्या में वृद्धि हुई। जड़ों वाली सब्जियों के उगाने से पशुओं का सारे साल चारा देना सम्भव हो गया। वर्ष भर ताजा मांस मिलने लगा। इसके पहले चारे की कमी के कारण सर्दी के पहले काफी पशु मारे जाते थे लेकिन अब ऐसा नही किया गया। दूध के उत्पादन में वृद्धि हुई।

(5) **दुभिक्षो का अंतः** तेरहवीं व चौदहवीं सदी तक इंगलैंड में अकाल पड़ते थे लेकिन अब इन अकालों का पडना बंद हो गया।

(6) **उद्योगों के लिये श्रमिकों की व्यवस्थाः** चकबन्दी के कारण जो किसान बेदखल हुए थे उनमें से अधिकाश ने कारखानों में नौकरी कर ली। फलस्वरूप औधोगिक क्रांति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(7) **नकद फसलों का उतपादन :** औद्योगिक क्रांति के समय इंगलैंड में वस्त्र उद्योग का तेजी के साथ विकास हुआ। इसके लिये कपास की आवश्यकता हुई। नवीन प्रणाली से कपास की जरूरत को कुछ हद तक पूरी किया गया।

8 निष्कर्ष :

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अठारहवीं शती में इंगलैंड की कृषि के क्षेत्र मे पनाई गई नवीन पद्धति ने फ्रांस व जर्मनी के कुछ भागों को ही विशेष रूप से प्रभावित या। पोलेंड, रूस, बाल्कन प्रदेश, आस्ट्रिया, इटली, स्पेन व पुर्तगाल आदि देशों मे इसका भाव काफी समय तक नहीं देखा गया। हार्टवेल के अनुसार आज भी यूरोप के पूर्वी भागो हमें नवीन उपकरणों व पद्धति के साथ साथ प्राचीन पद्धति व उपकरणों का प्रयोग देखने । मिलता है।

6.9 शब्दावली :

मेनर (Manor) - सामंतवादी युग का गांव

फार्म (Farm) - विशाल खेत

रोटेशन ऑफ क्रॉप्स (Rotation of Crops) - फसलों की अदला बदली

विनोईंग (Winnowing) - आनाज को साफ करने की एक पद्धति

सर्फ (serf) - सामंतों के अधीन कृषक दास

थ्रेसिंग (Threshing) - अनाज को साफ करने की एक पद्धति

एनक्लोजर - (Enclosure) - बाड़बन्दी अथवा चकबंदी

6.10 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. अठारहवीं शताब्दी के पहले युरोप के देशों में कृषि व्यवस्था पर प्रकाश डालिये। इस शताब्दी में इंगलैंड में इसमें क्या सुधार किये गये।
2. अठारहवी सदी में इंगलैंड में कृषि के क्षेत्र में नवीनीकरण के लिये जिम्मेवार परिस्थितियों का विश्लेषण कीजिये। इस नवीन पद्धति का इंगलैंड तथा यूरोप के अन्य देशों पर क्या प्रभाव पड़ा।

6.11 संदर्भ ग्रन्थः

Books for Reference

1 Chapter by R.R. Enfield in the book

'' Emopean Civilizatio'' Its origin and Development', Volume V under the direction of Edward Eyre. Oxford University Press, London, 1937.

2 Chapter by R.M. Hartwell in the book `The Camridge Modern History Volume IX (1793 - 1830)' edited by C.W. Crawley, Cambridge University Press, London, 1965.

3 Brison D. Gooch : Europe in the Nineteenth Century, The MacMillan Compony, London, 1970.

4 David Ogg: Europe in the Seventeeth Century, Hindi edition, Jaipur, 1967.

5 Carlton J.H. Hayes : Modern Europe to 1870, The MacMilian Company, New York, Sixth Print, 1960.

6 Langer, Eadie, Geanakoplos, Hexter, Pipes : Western Civilisation Volume II, Harper and Row, New York, Second Edition, 1975.

7 Wallbank and Taylor : Civilisation, Past and present, Volume II, Third Edition, 1975.

इकाई 7:
अठारहवी सदी में यूरोप में कृषक विद्रोह

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 पूर्वाभास

7.2 इंगलैंड में अठारहवीं सदी में बाड़बन्दी आन्दोलन

7.3 फ्रांस में कृषकों की दशा

7.4 जर्मनी के राज्यों में सुधार :

7.5 आस्ट्रिया- हंगरी

7.6 रूस में विद्रोह (1703-1772)

7.7 रूस में 1773-75 का कृषक विद्रोह

7.8 यूरोप के अन्य देशों में स्थिति

7.9 सारांश

7.10 बोध प्रश्न

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य :

इस इकाई में आप अध्ययन करेगें :

मध्य कालीन युग से लेकर सत्रहवीं सदी के अन्त तक सामन्तवादी व्यवस्था में सामंतों के अधिकार व कृषकों की दशा, केवल इंगलैंड में कृषक दास प्रथा का अन्त, चौदहवी सदी से सत्रहवी सदी के कृषक विद्रोहों का उल्लेख।

इंगलैंड में बाडबन्दी आन्दोलन

फ्रांस में महान क्रान्ति के पहले कृषकों की दशा, क्रांति के आरम्भ होने के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में सामंतों के निवास स्थानों पर किसानों के आक्रमण, 1789 से 1792 ई0 तक कृषक दासों की मुक्ति के लिये पारित किये गये अधिनियम।

जर्मनी के कुछ छोटे राज्यों में कृषक दासों की मुक्ति के आदेश तथा प्रशा में 1807

से 1817 तक कृषकों के हित में किये गये फ्रेडरिक महान के कार्य।

आस्ट्रिया - हंगरी साम्राज्य के बोहेमिया प्रदेश में 1768 से 1775 तक विद्रोह व उनके कारण, सम्राट जोजफ के सुधर के प्रयत्नों का सामंतो द्धारा विरोध।

रूस में किसानों का दमन, पीटर महान के शासन काल में किसानों पर अत्याचार, अठारहवीं सदी में आरम्भ से ही रूस के पूर्वी भागों में विद्रोह, कृषकों का लगातार दमन, 1773 ई0 में पुनः पूर्वी भागों में विद्रोह तथा उसकी भंयकरता, इस विद्रोह में श्रमिकों व गैर रूसी जाति के मनुष्यों का साथ, विद्रोहो की असफलता के कारण

अन्य यूरोपीय देशों में आन्दोलनों का न होना।

7.1 पूर्वाभास :

अठारहवीं सदी के आरम्भ में यूरोप के देशों में कृषकों की दशाः

नवीं शताब्दी से लेकन बारहवीं शताब्दी तक यूरोप में सामंतवादी व्यवस्था का जोर रहा। इस प्रथाा में बड़े सामन्त व उपसामन्त उन प्रभुसत्ता जनित अधिकारों का प्रयोग करते थे जिन पर पहले राजाओं का अधिकार था। इस व्यवस्था में कृषकों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी क्योंकि यह प्रथा कृषकों के शोषण पर आधारित थी। तेरहवीं सदी के शुरू से सामन्तवाद का ह्रास शुरू हुआ। धर्म युद्धों के प्रभाव, व्यापारिक वर्ग के उदय तथा राष्ट्रीय राज्यों कें उत्थान नें सामन्तों की शक्ति कम की। सामन्तों के अत्याचारों से त्रस्त होकर इंगलैंड में किसानो ने संगठित होकर सामन्तों का विरोध आरम्भ किया। 1348 ईस्वी में "काली मृत्यु" नामक एक महामारी के प्रकोप से यूरोप की आधी जनसंख्या मृत्यु का ग्रास बन गई। खेती में काम करने वाले किसानों व मजदूरों की भारी कमी हो गई। इंगलैंड में कृषक दासों ने अपनी मेहनत के लिए उचित पारिश्रमिक की मांग की। किन्तु उनके आन्दोलन को दबा दिया गया। 1381 ईसवी में वाट टाईलर के नेतृत्व में इंगलैंड के हजारों किसानों ने विद्रोह किया। इसमें शिल्पियों, व कारीगरों ने भी साथ दिया। लेकिन यह विद्रोह कुचल दिया गया।

इस समय इंगलैंड में व्यापार की उन्नति तथा पूंजी के विकास ने स्थिति में परिवर्तन ला दिया। सामंतो ने यह उचित समझा कि वे कृषकों को भूमि, हल, बैल बीज आदि साधन देकर उनकी उपज का एक निश्चित भाग ले लें। इस पद्धति ने किसानों की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। सोलहवीं सदी के अन्त तक इंगलैंड में कृषक दास की प्रथा लगभग समाप्त हो गई लेकिन कृषकों की समस्याओं का पूर्ण रूप से अन्त नहीं हुआ।

इंगलैंड के अतिरिक्त यूरोप के अन्य देशों में कृषक दास की प्रथा प्रचलित रही। स्मिरनोव और कानाकोवा नामद दो रूसी इतिहासकारों ने लिखा है कि रूस में चौदहवी सदी में सामंतवाद का और उत्कर्ष हुआ तथा उनके अधीन काम करने वाले कृषकों की दशा और खराब हो गई। पूर्वी यूरोप के अन्य देशों में भी कृषकों की यही दशा थी। पन्द्रहवीं सदी में जर्मनी फ्रांस व स्पेन में कृषकों ने असफल विद्रोह किये। पन्द्रहवीं सदी में जर्मनी, फ्रांस व स्पेन में कृषकों ने असफल विद्रोह किये। पन्द्रहवीं व सोलहवी सदी में यूरोप की जनसंख्या बढने लगी। कृषि के क्षेत्र में प्रचीन तरीकों के प्रयोग के कारण अनाज के उत्पादन में वृद्धि नही हुई। इसका प्रतिकूल प्रभाव पश्चिमी यूरोप की अपेक्षा पूर्वी देशों पर विशेष रूप से पडा क्योंकि खराब मानसून के फलस्वरूप पड़ने वाले अकालों के समय वहां पर यातायात व संचार की

दुव्यवस्था के कारण अन्य देशो से पर्याप्त मात्रा में अनाज शीघ्रता से नहीं मंगाया जा सकता था। पन्द्रहवी सदी में जर्मनी, फ्रांस व स्पेन में असफल कृषक विद्रोह हुए। सत्रहवीं सदी में फ्रांस में कई विद्रोह हुए जिनमे 1675 का जैकरी विद्रोह सबसे भंयकर था इसमें फ्रांस के ब्रिटेनी प्रदेश के पच्चीस हजार कृषकों ने भाग लिया यह विद्रोह भी कुचल दिया गया। सत्रहवीं सदी के अन्त तक भी कृषक इसी प्रकार से दुःखमय जीवन व्यतीत करते रहे। इंगलैंड को छोड़ कर सभी देशो में सामन्तों के अत्याचारों का अन्त नही हुआ। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के समय फ्रांस में किसाना को राजा, सामन्त व चर्च को कर अदा करने के लिये एक किसान अपनी आमदनी का 80 प्रतिशत भाग देना पड़ता था। उसे सामन्तों के यहां अनेक प्रकार की बेगार करनी पड़ती थी। अन्य मामलों में भी सामंतो के विशेषाधिकारों से वह त्रस्त था।

7.2 इंगलैंड में आठारहवीं सदी में बाडबन्दी आन्दोलन :

अठारहवीं सदी में इंगलैंड में कृषि के क्षेत्रमें अनेक नये प्रयोग किये गये। जेथ्रो हल (1674-1740) द्धारा बीज बोने के लिये एक यन्त्र, टाउनशैंड (1674-1738) की फसलों को बदल बदल कर बोने की पद्धति तथा पशुओं की नस्लों व संख्या बढाने के लिये राबर्ट बैकवैल ने 1770 के आस पास वैज्ञानिक प्रजनन की पद्धति के पालन ने खेती के उत्पादन तथा पशुधन को बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान दिया। आर्थर यंग (1741-1820) नामक एक धनी किसान ने छोटे छोटे खुले खेतों को मिला कर बड़े बड़े कृषि फार्म बनाने का प्रचार किया।

बड़े बड़े फार्मो के चारों और बाड़ लगाई गई। 1760 से लेकर 1815 के मध्य 956 बाडबन्दी अधिनियम बनाये गये। जे. एल. हैमन्ड व बारबरा हेमंड ने लिखा है कि पिछली दो शताब्दियों में यूरोप में शायद ही ऐसा कोई परिवर्तन हुआ जो इसके समान महत्व रखता हो। एनफीलड के मत में वस्तुतः यह आन्दोलन इंगलैंड के व्यापारिक व औधोगिक विकास से सम्बन्धित था। इसमें एक ग्राम को आत्म निर्भर बनाने के स्थान पर मुनाफा कमाने की व्यवस्था को अपनाया गया। अब फार्मो में उत्पादित अनाज को बढ़ती हुई जनसंख्या वाले नगरो में भेजा जाने लगा। इसने कृषि को एक पूंजीवादी उधोग बना दिया।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बाड़बंदी से काफी मात्रा में बेकार पड़ी भूमि में खेती किया जाना सम्भव हो सका तथा बड़े फार्मो में नवीन पद्धति से खेती किये जाने के फलस्वरूप भी कृषि उत्पादन बढा लेकिन बाड़बन्दी के कारण अनेक छोटे किसानों को भूमि छोडने के लिये बाध्य होना पड़ा। भूमि से बेदखल होकर वे रोजगार की तलाश में शहरों में चले गये।

यद्यपि हम इंगलैंड में बाड़बन्दी के आन्दोलन को विद्रोह नहीं मान सकते किन्तु कृषि के क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था। यह कृषि के क्षेत्र में ऐसा कदम था जिसने कृषि को व्यवसायिक रूप दे दिया।

7.3 फ्रांस में कृषकों की दशा :

1675 ई. के विद्रोह के बाद फ्रांस में महान क्रांति तक किसानो का कोई और विद्रोह नही हुआ और न ही उनकी दशा में कुछ सुधार हुआ। फ्रांसीसी क्रांति (1789) के समय चर्च लगभग पन्द्रह प्रतिशत, सामन्त बीस प्रतिशत, नगरों के धनी व्यक्ति तेतीस प्रतिशत भूमि के स्वामी थे। फ्रांस की आबादी का 85 प्रतिशत भाग खेती पर निर्भर था लेकिन असके पास केवल एक तिहाई भूमि थी। इनके पास जितनी भी भूमि होती वह उनके परिवार के भरण

पोषण के लिये पर्याप्त नहीं थी। उन्हें राजा, चर्च, सामन्त आदि को कर देने पडते थे। आर्थर यंग ने 1787 से 1789 तक फ्रांस के ग्रामीण क्षेत्रों का भ्रमण करके लिखा था कि आम तौर पर फ्रांसीसी कृषकों का मनोबल इतना कमजोर था कि उसे ऊचा उठाना संभव नही था। वे केवल जीवित रह कर ही संतुष्ट थे। जुलाई 1789 में बास्तील (Bastille) के पतन के समाचार ज्योहि फ्रांस के देहातो में पहुँचे वहां पर किसानों ने कुलीन वर्ग के निवासों पर आक्रमण कर दिये। इन आक्रमणों में विशेष रूप से उन दस्तावेजों को नष्ट किया गया जिनमें उनकी दासता के साक्ष्य उपलब्ध थे। सभी कृषक विद्रोहों की भांति इस विद्रोह में भी कृषकों का एक ही लक्ष्य था। वे दासता से मुक्त होना चाहते थे। इस प्रकार की कार्यवाही 1790 ईस्वी तक चलती रही।

फ्रांस की राष्ट्रीय सभा ने विशेषाधिकारों की समाप्ति के अन्तर्गत कानूनों द्वारा फ्रांस में कृषक दास की प्रथा समाप्त कर दी। पहले कानून द्वारा भू - स्वामियों के सभी व्यक्तिगत अधिकार समाप्त कर दिये गये और कृषकों को भूमि का स्वामी माना गया। दूसरे कानून में यह कहा गया कि फ्रांस में भूमि उसी तरह से स्वतन्त्र रहेगी जिस तरह से अब यहां के रहने वाले व्यक्ति स्वतन्त्र रहेंगे। अब एक कृषक अपने खेत में मनचाहे तरीके से खेती कर सकता था तथा अपनी उपज को बेच सकता था।

यद्यपि उपर्युक्त कानूनों के अनुसार कृषक दास प्रथा का अन्त हो गया लेकिन इनसे किसानों की सम्पूर्ण आशाएं फलीफूत नहीं हुई। इन के अनुसार सामन्तों के अनेक विशेषाधिकार जैसे सामंतों का भूमि पर स्वामित्व व्यक्तिगत अधिकार, शिकार व मछली पकडने के अधिकार समाप्त कर दिये गये तथा इनके बदले में किसानों को कोई मुआवजा अदा नही करने के आदेश दिये गये लेकिन भूमि का बकाया किराया और सामन्तों को अदा की जाने वाली अन्य बाकी देनदारियों को माफ नहीं किया गया। इनकी अदायगी करने के लिये एक किसान को लगभग बीस वर्ष का किराया अदा करना पड़ता था। अतएव किसानों में असंतोष बना रहा। 1792 व 1793 ई. में इस प्रकार की अदायगी को माफ कर दिया गया।

इस समय भूमिहीन किसान अथवा थोड़ी सी भूमि के स्वामी यह चाहते थे कि चर्च से छीनी हुई भूमि उनमें वितरित की जाय किन्तु ऐसी भूमि को समृद्ध किसानों अथवा व्यापारियों आदि ने खरीद कर उन्हें इससे वंचित किया।

7.4 जर्मनी के राज्यों में सुधार :

अठारहवीं सदी में जर्मनी अनेक राज्यों में विभाजित था। सभी राज्यों में कृषक अपनी दशा से असंतुष्ट थे। वे कभी भी विद्रोह कर सकते थे। अतः कुछ छोटे राज्यों ने कृषक दास की प्रथा का अन्त करने के लिए कानून बनाये। 1770 व 1780 के मध्य ड्यूक आफ सेवाय ने अपने प्रदेशों में कानूनों द्वारा इसको समाप्त किया। प्रशिया, जो कि एक बड़ा राज्य था, में वहां के सम्राट फ्रेडरिक मकान ने अपने अधीन भूमि में किसानों के करों व बेगार के भार को कम किया। 1786 ई. में उसकी मृत्यु तक इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति नही हुई। 1807 से लेकर 1817 ई. तक प्रशिया में अनेक आदेश जारी किये गये जिनके अनुसार कृषक अपने सामन्त को कुछ राशि अथवा भूमि का भाग देकर भू-स्वामी बन सकता था लेकिन ये आदेश उन किसानों पर लागू नहीं होते थे जो सदियों से एक भूमि पर खेती नहीं करते थे। अतएव इसका प्रभाव सीमित ही रहा।

7.5 आस्ट्रिया - हंगरी :

आस्ट्रिया - हंगरी के साम्राज्य में कृषकों की दशा अत्यंत शोचनीय थी। यहां तक कहा जाता है कि हंगरी व बोहेमिया में किसान पशुओं की तरह रहते थे। 1768 में बोहेमिया के किसानों ने विद्रोह किया। इसके तुरन्त बाद भी ऐसे विद्रोह होते रहे। इनका चरमोत्कर्ष 1775 के विद्रोह में देखा जा सकता है। किसानों की मुख्य शिकायतों का आधार यह था कि सामान्य वर्षो में भी उनसे भारी कर वसूल किया जाता था और असामान्य वर्षो (1765 और 1770) के बीच जब फसलें बार बार खराब हुई तब यह बोझ असहनीय हो गया। उस समय आस्ट्रिया में मेरिया थेरिसा का शासन था तथा उसका पुत्र जोजफ रीजेन्ट की हैसियत से शासन का संचालन कर रहा था। 1771 ई. में जोजफ ने बोहेमिया का दौरा किया। किसानों की दुर्दशा को देख कर उसने सिफारिश की कि कृषि दास प्रथा को समाप्त किया जाय। यद्यपि किसानो का बोझ हल्का करने के लिये मेरिया थेरिसा एक तदर्थ कानून बनाने के पक्ष में थी लेकिन वह इस प्रथा के संस्थागत अस्तित्व पर आक्रमण करने के लिये तैयार नहीं थी। सम्राट बनने के बाद जोजफ ने एक लम्बी योजना के तहत कृषक दास प्रथा को समाप्त करने का निर्णय लिया। उसने यह अनुभव किया कि इस प्रथा से राज्य को अधिक आय नही होती थी। कुलीन वर्ग को किसान जितना लगान देते थे उसका एक अंश ही कुलीन वर्ग राज्य को देता था। 1780 ई. के अध्यादेश के अनुसार उसने आस्ट्रिया - हंगरी में सामंती उगाही का बोझ कुछ कम किया तथा कृषि दासों को यह गारन्टी दी कि वे अपनी पैतृक भूमि के उतराधिकारी माने जायेंगें। 1784 के अध्यादेश के अनुसार भूमि कर की दरों को समान बनाया गया तथा विशेषाधिकार के नाम पर किसी भी वर्ग को मिलने वाली कर छूट को समाप्त किया गया। इसके लिये उसने भू - संपति के सर्वेक्षण का कार्य भी आरम्भ कराया जिसमें पांच वर्ष लगे। इस अवधि में विशेषाधिकार प्राप्त वर्गो ने इस अध्यादेश का इत्तना विरोध किया कि इसे कभी लागू नहीं किया जा सका।

इस प्रकार सामन्तवाद के अधिकारों को समाप्त करने में जोजफ असफल रहा।

7.6 रूस में विद्रोह (1703-1772)

रूस में कृषि दासों का दमन किया जाता था। अधिक से अधिक कार्य लेने के लिये कुलीन वर्ग अपने अधीन कृषकों को दबा कर रखते थे। 1649 ई. में किसानो के दमन से संम्बन्धित सभी कानूनो को विधि संहिता में संगठित किया गया। पीटर महान (1689-1725) के शासन काल में भी यही नीति अपनाई गई। उसने बडी संख्या में कृषकों को कुलीनों का दास बनाया। 1703 ई. में पीटर ने एक नयी राजधानी बनाने का कार्य आरम्भ किया। सेंट पीटर्सबर्ग के निमार्ण के लिये रूस के भिन्न भिन्न भागों से किसानों को लाया गया। उनके रहने व खाने की समूचित व्यवस्था नही की गई। फलस्वरूप सहस्त्रो किसान मर गये। उसने सामंतवाद को नव विजित प्रदेशो में भी लागू किया। इसी समय यूराल प्रदेश में लोह उधोग विकसित हो रहा था। वहां पर भी बडी संख्या में किसानों व श्रमिकों को भेजा गया। दक्षिण व दक्षिण पूर्वी रूस में रहने वाले श्रमिको ने करो के भार, तथा अनिवार्य सैनिक व श्रमिकों की भर्ती के अन्यायपूर्ण कार्यों के विरूद्ध विद्रोह आरम्भ किया। यह विद्रोह भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न समय में हुए। इनमें से सबसे लोकप्रिय विद्रोह अठारहवीं सदी के प्रथम दशक में अस्त्राखान वंश कीरिया और डान प्रदेशों में हुआ। 1705 ईस्वी में अस्त्राखान के विद्रोह ने

भयंकर रूप धारण कर लिया किन्तु उसे दबा दिया गया। 1707 ई. को डॉन में हुए विद्रोह में मुख्य रूप से किसानों ने भाग लिया। इनका नेता कोंड्राटी बुलावीन था। शीध्र ही यह विद्रोह समस्त दक्षिण पूर्व रूस में फैल गया। बुलावीन ने गैर रूसी जातियों का सहयोग प्राप्त करने की भी कोशिश की। जुलाई 1708 ई. तक चलता रहा। 1709 व 1710 ई. में इस प्रदेश में यदा कदा विद्रोह होते रहे। लेकिन पीटर ने इन विद्रोहों को दबा दिया। 1714 ई. के एक आदेश द्वारा असने भुमि पर सामन्तों के अधिकार को वंशोगत बना किया। भूखमरी के कारण भूमि छोड़ कर भागने वाले कृषको को ढूंढ कर लाने व उन्हें सजा देने का प्रबन्ध किया गया।

इस प्रकार रूस में अठारहवी सदी में सामन्तो को और अधिकार दिये गये।

यद्यपि केथेरिन महान को एक प्रबुद्ध निरकुंश शासक माना जाता है लेकिन उसने कृषक दासों की भलाई के लिये कुछ नहीं किया। 1765 ई. में सामन्तों को अधिकार दिये गये कि वे कृषको को सजा दे सकें। उनमें असंतोष की ज्वाला फिर से भड़क उठी।

7.7 रूस में 1773-1775 का कृषक विद्रोह :

सरकार द्वारा सामंन्तों की स्थिति दृढ़ करने और कृषकों पर उनके अधिपतियों के बढते हुए अत्याचारों के कारण दोनों वर्गों मे कटुता और बढ़ गई। रूसी साम्राज्य के पूर्वी भाग में कृषकों के अतिरिक्त खानों व लोहे के कारखानों में काम करने वाले श्रमिक भी अपनी दशा से असंतुष्ट थे। इस क्षेत्र में गैर रूसी जातियाँ तातार, मोर डोवियन, चुवाश्श (बेनओमे) और बेशकिर के किसान भी भूमि छीन जाने के कारण सरकार के विरूद्ध हो गये थे। गरीब कोसकों (Cossack) में भी असंतोष बढ़ रहा था।

मई 1773 इस्वी में डान प्रदेश का रहने वाला थेमेलियन पुगाचोव नामक एक कोसक जो कई बार जेल में सजा भुगत चुका था,कारागृह से भाग निकला। उसने स्वंय को रूस का सम्राट घोषित किया तथा पीटर तृतीय की उपाधि धारण की। कोसको व भूमि छोड़ कर भागे हुए कृषकों ने उसका साथ दिया। आरम्भ से ही पुगाचोव ने कृषकों को अत्याचार का मुकाबला करने के लिये उकसाया तथा उनकी दशा सुधारने के लिये प्रयत्न करने का वचन दिया। शीध्र ही उसका साथ यूराल के श्रमिकों ने दिया। उन्होंने अपने कारखानों से बंदूकों विद्रोहियों को दी तथा काफी मात्रा में कारखानों के बाहर बन्दूकें बनाई। दिसम्बर 1773 तक ओरनबर्ग पर्म और सिम्बर्स्क के प्रदेशों में भी यह विद्रोह फैल गया तथा गेर रूसी जातियों के सदस्य भी इसमें सम्मिलित हो गये । श्रमिकों तथा गैर-रूसियों का किसानों का साथ देने से स्थिति गम्भीर हो गई। मार्च 1774 में लातिश्चेवों (Tatishchevo) के किले पर शाही सेना ने पुनः अधिकार कर लिया। इसी समय उफा में भी विद्रोहियों की हार हुई। पुंगाचेव यूराल के पहाड़ो में चला गया। लेकिन यहां पर भी वह पराजित हुआ। अब वह वोल्गा के निकट के प्रदेशो की ओर मुड़ा। वहां पर उसे कृषकों व गैर रूसियों का समर्थन मिलने की आशा थी। जून 1774 में उसने कजान के शहर को जीत लिया। एक बार फिर हार कर पुगाचेव ने वोल्गा नदी को पार करके डॉन प्रदेश में पहुँचनें की कोशिश की। इस बीच सेना उसका बराबर पीछा कर रही थी। पुगाचेव को गिरफ्तार किया गया तथा जनवरी 1775 में उसे तथा उसके कुछ साथियों को फांसी दी गई। उसकी गिरफ्तारी के थोडे समय बाद विद्रोह शान्त हो गया।

पुगाचेव की हार के निम्नांकित कारण थे :-

(1) विद्रोह में भाग लेने वाले विभिन्न तत्वों में वह एकता कायम नहीं रख

(2) विद्रोहियों के दस्ते अनेक स्थानों पर तैनात कर दिये गये थे। अतएव वे संगठित होकर नहीं लड़ सकें।

(3) उनके पास शस्त्रों की कमी थी।

(4) शाही सेना की शाक्ति उनसे कहीं अधिक थी।

(5) उसमें संगठन की क्षमता का अभाव था।

(6) उसने अपने अनुयायियों के सामने उनकी दशा सुधारने के लिये एक कार्यक्रम की स्पषट रूपरेखा नहीं बनाई थी।

परिणाम : 1773-1775 ई. के विद्रोह के परिणाम कृषकों के लिये हितकारी सिद्ध नही हुए। केथंरिन द्वितीय ने 1775 इस्वी में एक अध्यादेश द्धारा प्रान्तों का पुनर्गठन किया। यह नई व्यवस्था पहले की अपेक्षा अधिक केन्द्रीकृत व निरकुश बनी। रूसी साम्राज्य के सीमावर्ती प्रातों जहांपर गैर रूसी काफी संख्या में रहते थे, सभी प्रकार की स्वायत्ता के अध्किारों कों समाप्त किया गया। 1785 ई. में सामन्तों को एक चार्टर (Charter) प्रदान किया गया। इसमें उन सब अधिकारों की पुष्टि की गई जिनका कि उस समय वे प्रयोग करते थे। उन्हे अपने संगठन बनाने का अधिकार भी दिया गया। इन संगठनो पर गर्वनरों को निरीक्षण के अधिकार दिये गये।

अठारहवीं सदी में रूस में कृषकों ने बार बार विद्रोह किये। इसका मुख्य कारण रूस के जारों की कृषक विरोधी नीति थी। उन्होनें समय पर सामंतो की शक्ति दृढ़ करने तथा कृषकों के दमन करने के लिये कानून बनाये। आम तौर पर अठारहवी सदी में रूस के कृषक विद्रोह उसके पूर्वी भाग में हुए जहां लोहे की खानों व कारखानों में श्रमिक काम करते थे तथा गैर रूसी जातियां निवास करती थी। अतएव अधिकांश कृषक विद्रोहों में उपर्युक्त तत्वों ने भी भाग लिया। ये विद्रोह संगठित न होने के कारण असफल रहे। वास्तव में वे रूसी साम्राज्य की शक्ति के आगे सफल भी नहीं हो सकते थे।

रूस में कृषकों की शोचनीय दशा उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक छः दशकों तक बनी रही। 1861 में सम्राट एलेकजेंडर द्वितीय ने रूस में एक अधिनियम द्धारा कृषक दास की प्रथा को समाप्त करने की धोषणा की। यद्यपि यह अधिनियम अपने उद्देश्य में पूर्ण रूप से सफल नही हुआ किन्तु फिर भी यह किसानों को सामन्तों के अन्यायों से बचाने की दशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

7.8 यूरोप के अन्य देशो की स्थितिः

अठारहवीं सदी में स्पेन, पुर्तगाल व इटली में कृषकों की दशा में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। यद्यपि वे सामन्तों के अन्यायों से पीड़ित रहे किन्तु उन्होनें सामन्त प्रथा के अन्त के लिये कोई आन्दोलन नहीं किया। बाल्कन प्रदेशो में इसी प्रकार की दशा थी। उस समय वहां पर तुर्की का राज्य था तथा वे पराधीनता का जीवन व्यतीत कर रहे थे इन सभी देशों में कृषि अत्यन्त पिछड़ी हुई दशा में थी तथा वहां के कृषक आन्दोलन करने की स्थिति में नहीं थे। हालैण्ड, डेनमार्क व स्वेड़न जो कि इंगलैंड़ के निकट थें, में भी इंगलैंड की तरह बाड़बन्दी की

गई तथा वहां पर नवीन कृषि पद्धतियों का अनुसरण किया गया। इससे वहां के किसानों की दशा कुछ हद तक सुधरी। इन देशों में भी अठारहवीं शताब्दी में कोई आन्दोलन नहीं हुआ।

7.9 साराशः

चौदहवीं सदी तक इंगलैंड में सामन्तवाद का बोलबाला था तथा कृषकों की दशा शोचनीय थी। लेकिन सोलहवीं सदी तक इंगलैंड में कृषक दास की प्रथा समाप्त हो गई। यूरोप के सभी देशों में कृषक दास की प्रथा अठारहवीं सदी के आरम्भ तक बनी रही। पन्द्रहवी सदी में जर्मनी, फ्रांस व स्पेन तथा सत्रहवी सदी में फ्रांस में असफल विद्रोह हुए।

अठारहवी शताब्दी में इंगलैंड में कृषि के क्षेत्र में नवीन पद्धति का विकास हुआ तथा बाड़बन्दी की गई। लेकिन हालैण्ड, फ्रांस व एशिया के कुछ भागों को छोड़ कर शेष यूरोप में खेती प्राचीन तरीकों से ही होती रही। सामन्तों के अन्याय भी यथावत बने रहे।

फ्रांसीसी क्रांति के आरम्भ होने के बाद कृषकों ने सामन्तों के निवास स्थान पर आक्रमण करके अपनी दासता के साक्ष्यों को नष्ट किया। 1789 ई. में राष्ट्रीय सरकार ने सामंतो से मुक्ति दिलाने के लिये दो कानून पास किये। 1792 व 1793 ई. में भी इस दिशा में प्रयत्न किये गये।

आर्स्ट्रिया - हंगरी साम्राज्य के बोहमिया प्रदेश में 1768 से 1775 तक बार बार किसानों के विद्रोह हुए यद्यपि वहां के सम्राट जोजफ ने कृषकों को कुछ रियायतें दी लेकिन विशेषधिकार प्राप्त वर्गो के विरोध के कारण उसके आदेशों को लागू नहीं किया जा सका।

रूस के शासकों ने सामन्तों का समर्थन प्राप्त करने के लिये समय समय पर उन्हे अधिकार प्रदान किये तथा कृषकों का दमन किया 1705 ई. से लेकर 1775 ई. तक रूस में कृषकों के अनेक विद्रोह हुए। इनमें से पुगाचेव के नेतृत्व में 1773-75 का विद्रोह सबसे भंयकर था। ये विद्रोह रूस के पूर्वी भागों मे हुए। इन विद्रोहों में खान व कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों तथा गैर रूसी जातियों ने भाग लिया। असंगठित होने तथा विद्रोह मे भाग लेने वाले तत्वों में एकता के अभाव में ये सब विद्रोह असफल रहे। इन विद्रोह के बाद भी रूस के शासकों ने दमन की प्रक्रिया जारी रखी।

यद्यपि यूरोप के अन्य देशों मे कृषकों की स्थिति खराब थी लेकिन वहां पर कोई आन्दोलन नहीं हुए।

7.10 बोध प्रश्न :

1 अठारहवीं सदी के आरम्भ में कृषकों की दशा का वर्णन कीजिय।

इस शताब्दी में आस्ट्रिया-हंगरी में हुए कृषक आन्दोलन का विद्रोह का विवेचन कीजिय।

2 अठारहवीं सदी में कृषकों के प्रति रूस के शासकों के दृष्टिकोण का विश्लेषण कीजिए। इस सदी में रूस में हुए कृषक विद्रोहों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए कृषक विद्रोहों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए उनकी असफलता के कारणों की विवेचना कीजिए ।

3 निम्नलिखित वाक्यों को पढ़ कर उनके सम्मुख सही ( ) या गलत ( ) का निशान लगाईयेः

(1) फ्रांसीसी क्रांति के आरम्भ होने के बाद कृषकों ने सामंतों के निवास स्थानों पर आक्रमण करके उन दस्तावेजो को नष्ट किया जो उनकी दासता के साक्ष्य थे।

(2) आस्ट्रिया का सम्राट जोजफ सामन्तवाद के अधिकारों को समाप्त करने में सफल रहा।

(3) अठारहवीं शताब्दी में रूस में कृषकों के अनेक विद्रोह हुए।

(4) अठारहवीं सदी में रूस के अधिकाशं कृषक विद्रोह के बाद वहां की सरकार ने उनकी स्थिति में सुधार किया।

7.11 संदर्भ ग्रन्थः

1 पार्थसारथी गुप्ता (सम्पादक): यूरोप का इतिहास, द्वितीय संस्करण, 1987, नई देहली

2 Peter Gay and R.K. Webb: Modern Europe, Harper and Row, New York, 1973. .

3. History of the U.S.S.R., Part I (English Translation)- From the Earliest Times to the Great October Socialist Revolution, Progress Publishers, Moscow, 1977.

4. Chapter VI and VII Written by M.P. Vyatkin and A.G. Mankow on Early Eighteenth Century and second Half of the Eighteenth Century, Robert Briggs - Early Modern Europe, 1560-1718, Oxford University Press, 1977.

5. Edward Eyre (Director) - European Civilization- Volume V,Oxford University Press, London, 1977

(i) Montague Fordham - The European Peasantry, 1600 - 1914.

(ii) R.R. Enfield : European Agriculture since 1750.

इकाई-8:
नगरों व शहरों का विकास एवं यूरोप में नगरीकरण

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्राचीन काल के नगरों की आबादी व बनावट

8.3 नगरों की आबादी में वृद्धि व उसके आंकड़े

8.4 जनसंख्या में वृद्धि के कारण

8.5 ग्रामों से नगरों की ओर पलायन

8.6 नये नगरों का स्वरूप

8.7 परिणाम

8.8 सारांश

8.9 बोध प्रश्न

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ पायेंगे कि यूरोप में नगर व शहरों का विकास कैसे हुआ। नगरीकरण की इस प्रक्रिया से ग्रामीण जीवन कैसे प्रभावित हुआ तथा नगरी करण के क्या परिणाम हुयें।

8.1 प्रस्तावनाः

प्राचीन काल के नगर एवं नागरिकों द्वारा अधिकारों की प्राप्ति हेतु किये गये प्रयत्न रो व यूनान की सभ्यता के इतिहास में अनेक नगर राज्यों का उल्लेख मिलता है। इटली व यूना के ऐसे नगरों के अतिरिक्त रोमन साम्राज्य के विभिन्न भागों में भी नगरों के अस्तित्व के बा में जानकारी मिलती है। उस काल में ऐसे नगर किसी राजा अथवा सांमत के गढ़ के चारों ओ बसाये जाते थे। ये नगर ग्रामों से कुछ बड़े होते थे। तथा इनकी आबादी भी गांवों से अधि होती थी। अपने अधिपति के प्रति नगर के निवासियों को लगभग उन्हीं दायित्वों का पाल करना पड़ता था जो कि गावों में कृषक दास (Serf) करते थे। धर्म युद्धों और राष्ट्रीय राज्य के उदय के कारण सामंतों की शक्ति क्षीण होने लगी। इस काल में वाणिज्यवाद का उदय विस्तार भी हुआ। नागरिकों ने सामंतो को बाध्य किया कि वह प्रत्येक परिवार से कर वसू

न करके समस्त नागरिकों से सामूहिक रूप से कर वसूल करें। उन्होंने अपने-अपने नगरों के बाजार का प्रबन्ध भी अपने हाथ में ले लिया। अपने अधिपति की अदालतों में विवादों का निपटारा कराने के स्थान पर वे अपनी बनाई गई अदालतों में मुकदमों की सुनवाई और फैसले करने लगे। ऐसे सब अधिकारों के सम्बन्ध में उन्होंने राजा अथवा सामंत से चार्टर (Charter) प्राप्त किये। इंग्लैण्ड में व्यापारियों के संगठनों ने सामंतों को विपुल धनराशि अदा कर ये अधिकार हस्तगत किये। फ्रांस व नीदरलैण्ड में नागरिकों के संगठनों को कम्यून (Commune) कहते थे। इन कम्यूनों ने अपने सामंतों के विरूद्ध सफलतापूर्वक विद्रोह किये। जर्मनी में अनेक नगरों ने मिलकर ऐसे अधिकार लिये तथा सामूहिक सुरक्षा के लिये प्रबन्ध भी किये। इस समय में कुछ प्रभावशाली पादरियों (बिशप) ने भी कुछ नगर बसाये। इन्हें बसाते समय उन्होंने नागरिकों को उनके अधिकारों के सम्बन्ध में चार्टर प्रदान किये।

8.2 प्राचीन काल के नगरों की आबादी व बनावटः

हेज के अनुसार चौदहवीं सदी के अन्त में यूरोप के अधिकांश नगरों की आबादी अधिक नहीं होती थी। पांच हजार की आबादी वाला नगर बड़ा माना जाता था। इससे भी अधिक आबादी वाले नगर थे लेकिन उनकी संख्या अधिक नहीं थी। यहाँ तक की लंदन, पैरिस, सेविल, वेनिस, ल्यूबेक, रोम आदि जैसे बहुत बड़े नगरों की आबादी एक लाख से कम थी। यूरोपियन देशों की अधिकांश जनसंख्या नगरों की अपेक्षा ग्रामों में अधिक थी।

उस समय के नगरों के निवासी व्यापार के साथ बागवानी व छोटे पैमाने पर कृषि करके अपना जीवन यापन करते थे। आम तौर पर एक नगर के चारों ओर मजबूत प्राचीर होती थी और अनुमति पत्र के द्वारा ही एक नगर के विभिन्न दरवाजों से शहर में प्रवेश मिलता था। नगर की चारदीवारी के अन्दर विभिन्न प्रकार के मकान होते थे जो एक दूसरे से सटे हुए होते थे। इसमें चर्च, टाउन हाल व व्यापारिक तथा कारीगरों के संगठन की इमारतें भव्य होती थी। सड़के चौड़ी नहीं थी। गलियाँ इतनी सकड़ी होती थी कि उनमें से घोड़ा गाड़ी आदि कठिनता से गुजरते थे। गलियों व बाजारों में पानी के निकास के लिये नालियों का प्रबन्ध नहीं होता था। प्रत्येक नगर में एक स्थानीय संस्था होती थी। रात में नगरों के दरवाजे बन्द कर लिये जाते थे। शांति व सुव्यवस्था बनाये रखने के लिये पुलिस नियुक्त की जाती थी लेकिन उनकी संख्या बहुत कम होती थी।

8.3 नगरों की आबादी में वृद्धि व उसके आंकड़े :

चौदहवीं सदी से इन नगरों की आबादी बढ़ने लगी। समय के साथ साथ अनेक कारणों से पहले से स्थापित नगरों की आबादी बढ़ती गई। यहां तक अनेक स्थानों में मनुष्य नगरों की चारदीवारी के बाहर भी बस गए। पन्द्रहवीं सदी के बाद के युग में यूरोप में कई अनेक नये नगर बसे तथा कुछ पुराने नगरों की समृद्धि नष्ट हो गई। लेकिन फिर भी 1830 में यूरोप में नगरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में मनुष्य अधिक संख्या में निवास करते थे। इटली व फ्रांस से उसकी कुल जनसंख्या की साठ प्रतिशत, एशिया में सत्तर प्रतिशत, स्पेन में नब्बे प्रतिशत और रूस तथा पूर्वी देशों में पिचानवें प्रतिशत आबादी गांवों में रहती थी। ज्यों ज्यों इन देशों में औद्योगिक विकास की गति में तेजी आती गई त्यो-त्यों गावों से मनुष्य अधिकाधिक संख्या में शहरों में आने लगे।

मध्य युग के अन्त व आधुनिक युग में नगरों के विकास के अनेक कारण है। इनमें सबसे प्रमुख कारण यूरोप के सभी देशों में जनसंख्या की लगातार वृद्धि होना है। प्रोफेसर कार सांडर्स ने 1300 व 1600 ईस्वी में यूरोप के विभिन्न देशों की जनसंख्या के निम्नांकित आंकड़े प्रस्तुत किये हैं :

क्र.सं.	देश का नाम	जनसंख्या 1300 ई.	1600 ई.
1	इंग्लैण्ड	चालीस लाख	पैंसढ़ लाख
2	फ्रांस	1 करोड़ 40 लाख	1 करोड़ साठ लाख
3	स्पेन व पुर्तगाल	साठ लाख	1 करोड़
4	जर्मनी (नीदरलैंड के साथ)	1 करोड़ 50 लाख	2 करोड़ तीस लाख
5	डेनमार्क	दस लाख	छः लाख
6	स्वेडन	छः लाख	
7	नार्वे	तीन लाख	
8	इटली	1 करोड़ ग्यारह लाख	1 करोड़ तीस लाख

इससे स्पष्ट है कि चौदहवीं से सत्रहवीं सदी में अनेक देशों की जनसंख्या में वृद्धि हुई। सत्रवीं सदी के बाद जनसंख्या की वृद्धि की दर और बढ़ गई। ज्यों-ज्यों विभिन्न देशों में औद्योगिक विकास की गति बढ़ी त्यों-त्यों जनसंख्या की वृद्धि की दर भी बढ़ी।

चौदहवीं सदी से यूरोप में जनसंख्या के बढ़ने के कारणों का संक्षिप्त में विश्लेषण करना आवश्यक है क्योंकि नगरीकरण में वृद्धि से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

8.4 जनसंख्या में वृद्धि के कारणः

1. **परम्परागत धारणाओं का अंतः** कार सॉंडर्स के अनुसार मध्य युग में ईसाई समाज में शरीर की पवित्रता (Celebeoy) को एक नैतिक कर्तव्य माना जाता था क्योंकि मनुष्य के जीवन में नैतिकता का अत्यन्त महत्व था। लेकिन अनेक ईसाई संतों ने खेलीबेसी (Calebacy) पर जोर देते हुए भी यह माना था कि अधिकांश स्त्रियों व पुरूषों को शादी कर लेनी चाहिए। फिर भी कुछ मनुष्य अविवाहित ही रहते थे। पुनर्जागरण के समय से यह धारणा कमजोर पड़ती गई।

2. **भयंकर रोगों के प्रकोप में कमीः** प्राचीन काल से ही प्लेग व हैजा भंयकर रोगों से यूरोप के देशों में बड़ी संख्या में मनुष्य मृत्यु के ग्रास बन जाते थे। अतएव मृत्यु दर अधिक थी। अनेक शिशु भी बाल्यावस्था में मर जाते थे लेकिन पन्द्रहवीं शताब्दी से औषधि विज्ञान में निरन्तर प्रगति होती गई। फलस्वरूप प्लेग व हैजा आदि का प्रकोप बहुत कम हो गया। शिशु भी अधिक संख्या में जीने लगे। इससे जन्म दर बढ़ती गई। मृत्यु दर के कम होने तथा जन्म दर के बढ़ने से आबादी में वृद्धि हुई।

3. **दुर्भिक्षों का अन्तः** लगभग सत्रहवीं शताब्दी तक वर्षा के अभाव में फसलें खराब हो जाती थीं तथा दुर्भिक्षों के प्रकोप से काफी मनुष्य मर जाते थे। कृषि की "नवीन

पद्धति'' के प्रयोग से अन्न का उत्पादन बढ़ता चला गया। फलस्वरूप अकालों का प्रकोप समाप्त हो गया।

4. **व्यापार में उन्नतिः** वाणिज्यवाद के उदय व विस्तार से अन्तर्देशीय व विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई। व्यापारिक कार्यों के लिये अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ने लगी। अब वाणिज्यवाद के समर्थकों के साथ राज्यों की सरकार भी जनसंख्या में वृद्धि चाहने लगी। वाणिज्यवाद के विशेषज्ञों- विलियम टेंपल, डेवीनेंट आदि ने राज्यों को इस ओर कदम उठाने के लिये प्रेरित किया। अनेक राज्यों ने विवाहित व्यक्ति को करों में छूट दी तथा अविवाहित व्यक्ति पर अतिरिक्त कर लगाये। कहीं कहीं पर बड़े परिवार वाले व्यक्ति को राज्य की तरफ से आर्थिक सहायता भी दी जाने लगी।

5. **कृषि उत्पादन में वृद्धिः** प्राचीन व मध्य युग में यूरोप में एक नगर की समृद्धि उसके आस-पास के क्षेत्रों में अनाज के उत्पादन पर निर्भर रहती थी। यातायात की कठिनाईयों के कारण दूसरे स्थानों से अनाज नहीं लाया जा सकता था। एक ओर तो कृषि उत्पादन में वृद्धि ने अकालों को लगभग समाप्त कर दिया तो दूसरी ओर यातायात के साधनों ने यह संभव कर दिया कि दूर-दूर से अनाज मंगाया जा सके। अतएव अब नगर अपने आस-पास के क्षेत्र के अनाज के उत्पादन पर निर्भर नहीं रहा। वह अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये अनाज का प्रबन्ध कर सकता था।

6. **सैनिक आवश्यकताएंः** यूरोप के विभिन्न देश पारस्परिक संघर्ष में लगे रहते थे। इंग्लैण्ड की पहले फ्रांस और बाद में हालैण्ड के साथ प्रतिस्पर्धा व तीस वर्षीय युद्ध (1618-1648) इसके उदाहरण हैं। फ्रांस के लुई चौदहवें (1643-1715) ने फ्रांस को युद्धों में उलझाये रखा। रूस के पीटर महान ने विस्तारवादी नीति अपनाई। इन युद्धों के लिये सैनिकों की आवश्यकता बनी रहती थी। अतः सब देश यह चाहते थे कि उनकी जनसंख्या में वृद्धि हो ताकि उन्हें अधिक सैनिक मिल सकें।

7. **औद्योगिक विकासः** इंग्लैण्ड में औद्योगिक विकास के फलस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि हुई। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं सदी में यूरोप के अन्य देशों में यह प्रक्रिया आरम्भ हो गई तथा उनकी जनसंख्या भी बढ़ती गई। अठारहवीं सदी के मध्य व उन्नीसवीं सदी के अन्त तक यूरोप की जनसंख्या में तीन गुनी वृद्धि हुई।

8.5 ग्रामों से नगरों की ओर पलायनः

नगरीकरण की एक विशेषता गांवों से शहरों की ओर मनुष्यों का पलायन था। इंग्लैण्ड में इस प्रकार का पलायन वाणिज्य के विकास से आरम्भ हुआ, कृषि की उन्नति तथा औद्योगिक क्रांति के समय इसमें वृद्धि हुई। अन्य देशों में भी व्यापार, कृषि व उद्योग के विकास के समय इस प्रकार की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। मध्य युग व आधुनिक युग के आरम्भ तक यूरोप के प्रत्येक देश में नगरों की आबादी के मुकाबले में ग्रामीण क्षेत्रों की आबादी बहुत अधिक थी। 1830 इस्वी में इटली व फ्रांस में कुल जनसंख्या का साठ प्रतिशत, प्रशिया में सत्तर प्रतिशत, स्पेन में नब्बे प्रतिशत और रूस तथा पूर्वी यूरोप के देशों में 95 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में रहता था।

गई। इस समय में यूरोप में पच्चीस नगर ऐसे थे जिनकी आबादी एक लाख के लगभग थी इनमें से चार इंग्लैण्ड तथा एक स्काटलैंड में था। इसमें लंदन की आबादी जो 1800 में एक लाख थी 1830 में डेढ़ लाख हो गई थी। इंग्लैण्ड को छोड़ कर शेष यूरोप में पैरिस, कुस्तुन्तुनिया, सेंट पीटर्सबर्ग, नेपल्स, वियना, मास्को, बर्लिन, एमस्टर्डम, डब्लिन, हेम्बर्ग, वारसा, मिलान, रोम, मेड्रिड, पेलरनों, वेनिस, लियों, बुडापेस्ट, मार्सेलिज व बार्सी लोना के नगरों की आबादी पचास हजार से लेकर तीन लाख तक थी ।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं सदी में नगरों की आबादी बढ़ती गई तथा ग्रामों की जनसंख्या में कमी आई। इस अवधि में एक ओर नगरों की आबादी बढ़ी और दूसरी तरफ काफी संख्या में भूमिहीन कृषक, कुशल कारीगर व श्रमिक गांवों से नगरों में आये।

नगरों की आबादी में वृद्धि तथा वहां गांवो से मनुष्यों के लगातार आगमन का परिणाय यह हुआ कि 1914 में इंग्लैण्ड में उसकी कुल जनसंख्या का 80%, फ्रांस में 45 प्रतिशत से कुछ अधिक तथा जर्मनी में 60 प्रतिशत व्यक्ति शहरों में रहते थे। इस समय में रूस, पोलैण्ड व डेनमार्क में लगभग एक तिहाई जनता शहरों में रहती थी। 1850 के बाद बड़े शहरों की आबादी में विशेष रूप से तेजी के साथ वृद्धि हुई। पहले पच्चीस नगरों को बड़ा माना जाता था लेकिन 1914 में ऐसे पचास नगर थे जिनकी आबादी एक लाख से अधिक थी।

ग्रामों से नगरों की ओर मनुष्यों के पलायन के लिये निम्नांकित परिस्थितियों जिम्मेवार थीः

1. **कृषक दासों की मुक्तिः** मध्य युग में जमींदारों ने कृषि में होने वाले घाटे से बचने के लिये यह उचित समझा कि वे कृषकों को हल, बैल आदि साधन दे कर तथा उनसे फसल के एक निश्चत भाग लेकर भूमि काश्त के लिये दे दें। इस पद्धति से एक ओर तो जमींदार संभावित नुकसान से बच गये तथा दूसरी ओर किसान जमींदार के प्रति अन्य दायित्वों से मुक्त हो गये। फलस्वरूप इंग्लैण्ड में धीरे-धीरे कृषक मुक्त हो गये। सोलहवीं सदी तक वहां पर कृषक दास (serfdom) की प्रथा लगभग समाप्त हो गई। अब ग्रामों से अनेक किसान शहर की ओर चले गये।

2. **खेतों की बाड़ बंदीः** इंग्लैण्ड में तथा कुछ समय बाद फ्रांस व जर्मनी के कुछ भागो में छोटे-छोटे खेतों को मिला कर बड़े खेत (farms) बनाये गये। इससे अनेक गरीब किसान भूमिहीन हो गये तथा रोजगार की तलाश में नगरो में आये।

3. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विकासः** वाल बैक व टेलर के अनुसार पंनद्रहवीं सदी मे इंगलैण्ड एक महत्वहीन व्यापारिक राष्ट्र था। लेकिन सोलहवीं सदी में इंगलैण्ड का व्यापार बढ़ने लगा। इसी समय में पश्चिमी यूरोप के कुछ देशों का व्यापार भी बढा। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के केन्द्र आन्तरिक भागों के नगर थे जहां बाहर जाने वाला माल इकट्ठा किया जाता था। लेकिन इनसे भी अधिक हलचल उन बन्दरगाहों पर होती थी जहां से जहाज बाहर जाते थे। अतएव ऐसे स्थानों पर रोजगार के लिये गांवों से काफी मनुष्य आकर बसे।

4. **औधोगिक विकास :** इंगलैण्ड में औधोगिक क्रांति के समय कारखानों को बड़ी मात्रा में मजदूरों की आवश्यकता हुई। गांवों से भूमिहीन कृषक, कारीगर, श्रमिक

व बेकार व्यक्ति शहरों के कारखानों में काम करने आये।

8.6 नये नगरों का स्वरूप

प्राचीन नगरों की चार दीवारी के बाहर भी मनुष्य मकान बना कर रहने लगे। धीरे-धीरे अनेक नगरों में सुरक्षा की ये प्राचीरें तोड़ दी गई।

औद्योगिक विकास की गति में तेजी के फलस्वरूप जिन नगरों की आबादी बढ़ रही थी, वे नगर आस पास के देहातों तक फैल गये। यहां तक कि ऐसे देहाती क्षेत्र नगरों के समूह बने गये। ऐसे स्थानों में नगरों तथा ग्रामों के मध्य का अन्तर लगभग समाप्त हो गया। इस प्रकार का परिवर्तन इंगलैण्ड तथा जर्मनी औद्योगिक प्रदेशों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था।

कुछ स्थानों पर गांवों ने नगरों का रूप धारण कर लिया क्योंकि इन स्थानो पर व्यापार अथवा उधोगों के केन्द्र खुल गये थे। इंगलैण्ड में इस प्रकार की प्रकिया का प्रभाव सबसे अधिक हुआ।

इंगलैण्ड में राजधानी के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी नगरों का विकास हुआ लेकिन यूरोप में राज्यों की राजधानियों की आबादी ही विशेष रूप से बढी।

8.7 परिणाम :

1. मध्यम वर्ग का उदय : नगरीकरण के विस्तार के युग का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम इन नगरो मे मध्यम वर्ग का उदय था। लेंगर ने लिखा है कि नागरिक जीवन से नवोदित मध्यम वर्ग का सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह कहना कठिन है कि इस बुर्जोय (**Burgeoise**) वर्ग में किस प्रकार के व्यकित सम्मिलित थे। केवल यही कहा जा सकता है कि आम तौर पर मध्यम वर्ग के सदस्य गैर कृषि कार्यो तथा कुशल कारीगरी के कार्यो के अतिरिक्त अन्य कार्यो से प्राप्त आमदनी से अपनी जीविका चलाते थे। उनके पास न तो कृषि के लिये काफी भूमि होती थी और न ही वे श्रमिक बन कर कमा सकते थे।

मध्यम वर्ग को भी उच्च व निमन श्रेणी में विभाजित किया जा सकता है। उच्च वर्ग में बड़े व्यापार, उघोगपति, बैंकर धनी निवेषक और अच्छी आय वाले व्यवसायों में काम करने वाले व्यक्ति थे। निम्न मध्यम वर्ग के सदस्य उच्च वर्ग तथा मध्यम वर्ग की उच्च श्रेणी के व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरी करते थे। इनमें दूकानदार, कुशल कारीगर, बैकों, सरकारी दफतरों, औधोगिक व व्यापारिक प्रतिष्ठानों में काम करते थे। वकीलों, कलाकारों व बुद्धीजीवियों को भी इसमें सम्मिलित किया जा सकता है।

इस मध्यम वर्ग ने यूरोप के प्रत्येक देश की राजनीति मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यद्यपि उच्च मध्यम वर्ग के सदस्य संतोष पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे लेकिन निम्न मध्यम वर्ग को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था।

2. श्रमिकों का दुखमय जीवन : यूरोप के नगरों के औधोगिक प्रतिष्ठानों तथा कृषि फार्मो में एक बड़ी संख्या में श्रमिकों को नौकरी दी गई। फैकटरियों में काम करने वाले मजदुरों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उनके रहने की उचित व्यवस्था नही की गई थी। वे तंग गलियों और बिना हवादार मकानों में रहते थे। इससे उनके तथा उनके परिवार के सदस्यों पर बुरा

असर पड़ता था। शहरों में काम करने वाले अन्य अकुशल श्रमिकों की दशा भी खराब थी।

3. नगरो का बेतरतीब विकास : लगभग यूरोप के सभी नगरों का विकास बिना किसी योजना के हुआ। पहले से ही नगरों में तंग गलियां व कम चौड़ी सड़के थी। अब ये बढ़ती हुई आबादी के लिए कठिनाईयों पैदा करने लगी। शहर की चारदीवारी के बाहर भी मकानों का निर्माण बेतरतीब ढंग से हुआ। स्थानीय संस्थाएं उन पर कोई नियन्त्रण नही रख सकी।

4. स्वास्थ्य पर बुरा असर : यह पहले बताया जा चुका है, कि मध्यकाल के आरम्भ के नगरों में पानी के निकास की समुचित व्यवस्था नही थी तथा शहरों में गदंगी रहती थी। इससे नागरिकों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता था। पुराने नगरों के विकास तथा नये नगरों की स्थापना के समय इस समस्या पर ध्यान नही दिया गया। समय के साथ साथ यह समस्या गम्भीर होती चली गई। अनेक गन्दी बस्तियां (Slums) बनी। फलस्वरूप मनुष्य विभिन्न बीमारियों से ग्रस्त होने लगें।

5. अपराधों की संख्या में वृद्धि : शहरी बेरोजगारी की संख्या धीरे धीरे बढ़ती गई। इसने शहरों में रहने वाले मनुष्यों में अपराध की प्रवृति को जन्म दिया अथवा उसको उकसाया।

6. मानसिक तनाव : ग्रामों की अपेंक्षा शहर का जीवन अधिक तनाव पूर्ण होता है। एक नागरिक अपनी जरूरतों को पूरी करने में स्वंय को असमर्थ पाता है और मानसिक तनाव का शिकार हो जाता है।

लेकिन शहरों के उत्थान व विकास के अनेक लाभ भी थे।

1. **बुद्धिजीवी वर्ग का विकास :** ग्रामों की अपेक्षा शहरों में रहने वाले बुद्धिजीवियों की संख्या अधिक थी। ये बुद्धिजीवी आपस में मिलते भी रहते थे। फलस्वरूप नगरो में साहित्य व कला का विकास हुआ।
2. **वैज्ञानिक प्रगति :** यूरोप के नगरों मे वैज्ञानिक अनुसंधान के केन्द्र खोले गये। इसमें अनुसंधान की सुविधाए उपलब्ध कराई गई। इससे वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रगति हुई।
3. **सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तनों के केन्द्र :** यूरोप के सभी नगर सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक क्रांति के केंन्द्र बन गये। वहां पर इन क्षेत्रों मे काफी हलचल होती रहती थी तथा वे मिल कर किसी भी अन्याय का विरोध करने के लिये शीध्र संगठित हो जाते थे।

शहरों और ग्रामों की सम्यता में अन्तर अभी तक विद्यमान है। गांव के निवासी शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करते है लेकिन शहरों के निवासियों का जीवन बाह्य आडंबर व तड़क भड़क से परिपूर्ण होता है। अतएव शहरों में रहने वाला सदैव किसी न किसी प्रकार के तनाव से ग्रस्त रहता है। शहरों के कोलाहल पूर्ण जीवन में उसे शांति नहीं मिलती। लेकिन वह इस जीवन का अभ्यस्त हो जाता है।

8.8 सारांश :

इस इकाई मे आपने यूरोप के प्राचीन काल के नगरों की स्थिति का अध्ययन किया तथा व्यापारिक संगठनों व कम्यूनों द्धारा सांमतों से अधिकार पत्र (बिंतजमत) प्राप्त करने के बारे में जानकारी प्राप्त की। उस समय के नगरों की आबादी व बनावट के सम्बन्ध में यह मालूम

हुआ कि वे बेतरतीब बने थे तथा उनकी आबादी पांच हजार से एक लाख तक थी। यूरोप की कुल जनसंख्या में से अधिकांश ग्रामों में ही रहती थी। लेकिन 1300 से 1600 ई. के मध्य शहरों की आबादी बढ़ी। इसका मुख्य कारण सभी स्थानों पर जनसंख्या में वृद्धि थी। इसके साथ यह भी जाना कि इसके कया कारण थे। ग्रामों से नगरों की ओर काफी संख्या में व्यक्तियों के पलायन से नगरों की जनसंख्या बढी। 1851 के बाद विभिन्न नगरों की आबादी के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि उस समय एक लाख से अधिक आबादी वाले शहरों की संख्या 25 थी। नये नगरों के स्वरूप के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि इंग्लैण्ड व शेष यूरोप के नगरो की स्थिति व विकास में अन्तर था। नागरिक जीवन के लाभों और हानियों के बारे में अध्ययन करने से यह मालूम होता है कि ग्रामवासियों की अपेक्षा शहरी जीवन अधिक तनावपूर्ण होता है।

8.9 बोध प्रश्नः

1. ग्रामों से नगरों की ओर पलायन के क्या कारण थे ?
2. यूरोप के नगरों में मनुष्यों को किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा ?
3. यूरोप की जनसंख्या में वृद्धि के कारणों का विश्लेषण दीजिए। चौदहवीं सदी से यूरोप के देशों में इसने नगरीकरण को किस प्रकार से प्रभावित किया ?

8.10 संदर्भ ग्रन्थः

1. Chapter by R.R. Enfield in the book 'European Civilization -- Its origin and Development', Volume V under the direction of Edward Eyre. Oxford University Press, London, 1937.
2. Chapter by R.M. Hartwell in the book 'The Cambridge Modern History Volume IX (1793-1830) edited by C.W. Cramley, Cambridge University Press, London, 1965.
3. Brison D. Gooch: Europe in the Nineteenth Century, The Macmillan Company, London. 1970
4. David Ogg: Europe in the Seventeenth Century, Hindi edition, Jaipur, 1967.
5. Carlton J.H. Hayes: Modern Europe to 1870, The Macmillan Company, New York, Sixth Print, 1960.
6. Langer, Eadie, Geanakoplos, Hexter, Pipes: Western Civilization; Volume II, Harper and Row, New York, Second Edition, 1975.
7. Wallbank and Taylor: Civilization- Part and Present, Volume II, Third edition, 1975.

इकाई-9:
कारखाना और श्रमजीवी वर्ग

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 फैक्ट्री सिस्टम

9.1.1 फैक्ट्री क्या है ?

9.1.2 फैक्ट्री सिस्टम कैसे शुरू हुआ ?

9.1.3 एक काल्पनिक फैक्ट्री का कार्य विन्यास

9.2 फैक्ट्री सिस्टम एवम् औद्योगिक क्रांति

9.3 फैक्ट्री सिस्टम का सामाजिक असर

9.4 बुराइयां

9.5 बुराइयों को दूर करने के प्रयास एवम् समाधान

9.5.1 संसदीय प्रयास

9.5.2 समाज सुधार और अंबधनीति

9.5.3 सुधारक यत्न जारी रहे

9.5.4 सैड़लर के प्रयत्न

9.5.5 एशले का कानून

9.6 समाज और सामाजिक परिवर्तन

9.7 सारांश

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.8.1 अंशो पर छोटे सवाल

16.8.2 सारी इकाई पर सवाल

9.9 प्रासंगिक पठनीय ग्रन्थ

0 उद्देश्य

लगभग 1750 से लेकर 1850 तक के काल को पश्चिम यूरोप में औद्योगिक क्रांति का काल माना जाता है। अन्य इकाइयों में तुमने औद्योगिक क्रांति के बारे में विस्तार से पढ़ा होगा। अन्य बातों के अलावा, औद्योगिक क्रांति का संबंध उत्पादन के लिए एक नए सामाजिक विन्यास को नाम दिया गया "फैक्ट्री सिस्टम"। फैक्ट्री सिस्टम में काम करने के लिए समाज में एक नए श्रमजीवी वर्ग का जन्म हुआ। इस इकाई में हम फैक्ट्र

सिस्टम और इसमें काम करने वाले श्रमजीवी वर्ग के बारे में जानेंगे।

9.1 फैक्ट्री सिस्टम

9.1.1 फैक्ट्री क्या है ?

औद्योगिक क्रांति से शुरूआत के भी पहले की बात है। किसी तिजारत करने वाली कंपनी के नुभाइंदे को "फैक्टर" बुलाया जाता था। उसके दफ्तर को "फैक्ट्री"। फैक्ट्री से कंपनी खरीद-फरोख्त करती। मसलन हम अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कंपनी को लें। जब कंपनी सत्रहवीं सदी में भारत आई तो उसने गुजरात तट पर सूरत बंदरगाह में अपनी पहली प्रमुख फैक्ट्री स्थापित की। इस फैक्ट्री में कंपनी अपना व्यापार का सामान रखती और हिन्दुस्तानियों के साथ खरीद-फरोख्त करती। ख्याल रखने वाली बात यह है कि ईस्ट इण्ड़ियां कंपनी एक तिजारती कंपनी थी और उसका उत्पादन से-चाहे वह औद्योगिक हो या फिर गैर औद्योगिक-कोई सीधा सरोकार न था।

जैसे जैसे अठारहवीं सदी में औद्योगिक क्रांति का विस्तार हुआ वैसे-वैसे फैक्ट्री शब्द का प्रचलित अर्थ भी बदलता गया। अब फैक्ट्री का अर्थ उस स्थान से हुआ जहां कि मशीनों के द्वारा कारीगर काफी मात्रा में चीजों को बनाते। यही अर्थ आज तक साधारण बोलचाल की भाषा में प्रचलित है। सो जिस कारखाने में हवाई जहाज बनता है वह भी फैक्ट्री कहलाता है और जिसमें कपड़े बनते है वह भी। हालांकि "फैक्ट्री" केवल चीजें बनाने वाले कारखाने को कहा जाता था, फैक्ट्री जैसी उत्पादन व्यवस्था और कर्म विन्यास उद्योगों में भी प्रयुक्त होती थी, जैसे कि कोयला खंदानें।

इस इकाई में हम मुख्यतः औद्योगिक क्रांति के पहले चरण पर गौर करेंगे। इस चरण (1750-1850) में फैक्ट्रीयां ज्यादातर सूत कातने की, कपड़ा बुनने की, और लोहे का काम करने वाली होती थीं।

9.1.2 फैक्ट्री सिस्टम कैसे शुरू हुआ ?

पूंजीवादी व्यवस्था के शुरूआत के दिनों में पश्चिमी यूरोप में उत्पादन मुख्यतः "पुटिंग आउट" सिस्टम पर निर्भर करता था। इस व्यवस्था में पूंजी का मालिक व्यापारी कारीगरों को कच्चा माल खरीद कर देता, कारीगर अपने-अपने घरों पर अपनी ही मशीनों से चीजें बनाते जिन्हें कि व्यापारी इकट्ठा कर के बाजार में बेचता। इस व्यवस्था में फायदा यह था कि व्यापारी दूर-दूर तक फैले कारीगरों से कामा करवा सकता था और उसे अपने कारीगरों के रहने खाने की व्यवस्था भी नहीं करनी पड़ती।

पर इस व्यवस्था में नुकसान कई थे। एक तो व्यापारी को अपने कारीगरों तक पहुंचने में और उनसे बना हुआ माल लेने में काफी समय बर्बाद करना पड़ता। दूसरे, काम की क्वालिटी बरकरार रखना मुश्किल था। तीसरे, कारीगर के समय पर काम करवाने में दिक्कत होती थी।

इन मुश्किलों से पार पाने का एक तरीका था। वह यह कि सारे कारीगरों को एक ही कारखाने में इकट्ठा कर लिया जाए। पर ऐसा करने पर व्यापारी को कारखानेह की इमारतें बनाने में पैसा लगाना पड़ता, मशीने खरीदनी पड़ती, और फोरमैनों और सुपरवाइजरों को

नौकरी पर लगाना पड़ता। अर्थात् व्यापारी का उपरला खर्च काफी बढ़ जाता।

पर जब 1700 में स्वीड़न के व्यापारी क्रिस्टोफर पोलहेम ने 100 कारीगरों वाली एक बर्तन-भांड़े की फैक्ट्री स्थापित की तो उसने पाया कि उत्पादन पर कुल खर्च इतना कम हो जा रहा था कि उपरला खर्च बढ़ने के बावजूद वह अच्छा खासा मुनाफा कमा लेता।

9.1.3 एक काल्पनिक फैक्ट्री का कार्य विन्यास

एड़म स्मिथ अपनी किताब द वेल्थ ऑफ नेशन्स (1776) में एक साधारण पिन बनाने वाली फैक्ट्री का वर्णन करता है। जब पिन घरेलू उद्योगों में बनाए जाते थे तो एक या दो व्यक्ति ही पिन बनाने में लगते थे। पर फैक्ट्री में पिन बनाने की प्रक्रिया को कई हिस्सों में बांट दिया गया। एक आदमी तार खींचता, दूसरा उसे सीधा करता, तीसरा काटता, चौथा उसके एक सिरे को नुकीला करता, पांचवां उसके दूसरें सिरे को घिसता, वगैरह। इस तरह तार खींचने से लेकर बने हुए पिन को कागज की पुड़िया में पैक करने तक एड़म स्मिथ ने कोई 32 चरण गिने। इनमें से किसी भी चरण पर हुनरमंद कारीगर की जरूरत नहीं थी। एक बच्चा भी इनमें से किसी एक चरण को बखूबी पूरा कर सकता था। यह फैक्ट्री सिस्टम की प्रमुख विशिष्टता थी।

फैक्ट्री में उत्पादन की प्रक्रिया को बहुत ही सरल छोटे-छोटे हिस्सों में बांट दिया गया। हर चरण को एक साधारण अकुशल श्रमिक भी आसानी से पूरा कर सकता था। यानि कि अब कारखाने की उत्पादन-क्षमता किसी व्यक्ति विशेष की दक्षता पर निर्भर नहीं करती थी बल्कि सारे कारखाने के आर्गनाइजेशन पर जिसे कि एक मैनेजर आसानी से कंट्रोल कर सकता था। फिर चूंकि दक्ष कारीगरों की जरूरत नहीं थी तो फैक्ट्रीयों में स्त्रियों और बच्चों को आसानी से श्रमिकों के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता था और हालांकि स्त्रियां और बच्चे एक पुरुष जितना ही उत्पादन करते उनकी तनख्वाह आदमियों की तुलना मे कहीं कम रहती। इस सब से फैक्ट्री के मालिक को काफी मुनाफा होता।

9.2 फैक्ट्री सिस्टम एवम् औद्योगिक क्रांति

इतिहासकार होक्सबाम का कहना है कि वैसे तो सत्रहवीं सदी से ही उत्पादन प्रक्रिया में अनेक प्रकार के यांत्रिक सुधार होने शुरू हो गए थे। पर सिर्फ यांत्रिक सुधार ही औद्योगिक क्रांति नहीं ला सके। औद्योगिक क्रांति के लिए जरूरी था कि उत्पादन इतना ज्यादा और इतना सस्ता हो कि बाजार में आप से आप इस उत्पाद के लिए मांग बढ़े। ऐसा तब ही हो सका जब यांत्रिक सुधारों के साथ उत्पादन के लिए एक नए कर्म विन्यास का इस्तेमाल किया गया। जब उत्पादन की प्रक्रिया से संबंधित डिवीजन आफ लेबर को (काम के बंटवारे) को काफी जटिल बना दिया गया। उत्पादन की प्रक्रिया को कई छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट दिया गया और एक मजदूर के जिम्मे केवल एक ही हिस्सा रखा। यही फैक्ट्री सिस्टम की प्रमुख विशिष्टता थी।

9.3 फैक्ट्री सिस्टम का सामाजिक असर

मुनाफा बढ़ाने के लिए यह जरूरी था कि फैक्ट्री में लगी मशीनों का ज्यादा से ज्यादा उपयोग किया जा सकें। फैक्ट्री मालिकों की चेष्टा यह रहती थी कि अपने कारीगरों से तब तक लगातार काम करवाते रहें जब तक की मशीन ही जवाब न दे जाए। इसका मतलब यह

था कि कामगारों को काम करने के तरीके का एक नया अनुशासन सीखना पड़ा।

इतिहासकार ई.पी. हामप्सन का मानना है कि जिस तय से मशीन चलती है उसी लय के श्रमिकों को चलना सीखना पड़ा। समय की पाबंदी सीखनी पड़ी- कि एक निश्चित समय पर काम पर आएं, और एक निश्चित् समय पर काम से हटें। एक ही स्थान पर खड़े होकर लगातार एक ही यांत्रिक काम को लगातार करते रहने की आदत ड़ालनी पड़ी। यदि किसी के जिम्मे पिन का तार घिसना था तो वह लगातार, दिनभर, केवल तार ही घिस सकता था। जिस व्यक्ति को तार सीधा करने का काम दिया गया दिनभर एक ही स्थान पर खड़े रहकर केवल तार ही सीधा करता रहता।

जैसे-जैसे समय बीतता गया इस पूरे सिस्टम के दुर्गुण भी सामने आते गए। सबसे पहले जो बात सामने आई वह यह है कि फैक्ट्री में लगातार, एक ही जगह पर, कठपुतली की तरह काम करते रहना काफी उबाऊ था। श्रमिक थोड़े ही समय में इस तरह के काम से जी चुराने लगते। जब फैक्ट्री का मालिक उनसे जबरदस्ती काम करवाता तो जाहिरा तौर पर काम करने वालों को यह बात अखरती और उन्हे खट्टे दिल से काम पर लगे रहना पड़ता।

जहां तक काम करने की परिस्थितियों का सवाल है, कुछ बातें साफ हैं। एक तो यह कि यह कहना मुश्किल है कि फैक्ट्री में काम करने वालों की परिस्थिति दूसरे श्रमिकों की परिस्थिति से बेहतर थी या बदतर। ऐसा इसलिए कि इतिहासकारों के पास औद्योगिक क्रांति से पहले के काल के श्रमिकों के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है। हां यह जरूर पता है कि तेरहवीं सदी से ही उत्तर यूरोप में पगार पाने वाले मजदूर हुआ करते थे और उनकी हालत अन्य मजदूरों की हालत से खराब नहीं थी। वैसे भी सत्रहवीं-अठारहवी सदी में, कम से कम इंग्लैण्ड में, पुटिंग आउट सिस्टम के तहत काम करने वाले बहुत सारे मजदूर पगार की एवज में ही काम किया करते थे। कहने का मतलब यह है कि फैक्ट्री मजदूर का तनख्वाह मजदूर होना समाज के लिए कोई नहीं बात नहीं थी।

9.4 बुराइयां

जो नई बात थी वह यह कि जब फैक्ट्रीयां बनीं तो एक साथ बहुत सारे मजदूर शहरों में इकट्ठा हुए। इस जमाव में उनकी दुर्दशा भी समाज के सामने कहीं ज्यादा प्रखर रूप से उजागर हुई।

उद्योगों में बच्चों और औरतों को सोलह घंटे या उससे भी ज्यादा काम करवाया जाता। थकान के कारण यदि कोई काम नहीं कर पाता तो उसे बेल्ट से पीटा जाता था तनख्वाह काट ली जाती। तनख्वाह वैसे भी काफी कम मिलती थीः एक हफ्ते के लिए किसी हुनरमंद कारीगर को 1795 में कोई 25 शिलिंग, और साधारण मजदूर को सिर्फ 12 शिलिंग मिला करते थे। महिलाओं को पुरुषों से आधी, और बच्चों को एक चौथाई तनख्वाह ही मिलती। हालांकि वे पुरुषों जितना ही काम करते।

कोयले की खदानों में तो स्थिति और भी ज्यादा खराब थी। यहां चार से पांच साल के बच्चों को खदान की सुरंग के अंदर बारह से सोलह घंटे काम करवाया जाता। इनकी औसत पगार दो से तीन शिलिंग प्रति सप्ताह थी।

फैक्ट्री सिस्टम के आने से मजदूरों की गरीबी भी बहुत ज्यादा उजागर होने लगी। वैसे तो औद्योगिक क्रांति के शुरू के सोलों में ही यह साफ हो गया था कि समाज में निरीह गरीबों की संख्या बढ़ रही है। पर इस स्थिति से बचने के लिए कुछ खास नहीं किया गया। स्पीनहेमलैण्ड़ नामक कस्बे में गरीबों की मदद के लिए एक सिस्टम जरूर शुरू किया गया जिसे स्पीनहेमलैण्ड़ सिस्टम के नाम से जाना जाता था। कुछ दूसरे कस्बों ने भी इस सिस्टम को अपनाया। पर बढ़ती हुई औद्योगिक गरीबी के सामने यह सिस्टम पस्त हो गया।

शहरों में स्थिति कुछ ऐसी थी कि मजदूरों की हालत बद से बदतर होती चली गई। शहर बगैर किसी योजना के, बेतहाशा बढ़ते चले गए। उनकी नगरपालिकाएं इस नई आबादी की देखभाल करने में असमर्थ रहीं। शहरों में गंदी, दरिद्र बस्तियां पनपने लगीं जिन्हें अंग्रेजी में स्लम कहते हैं। जहां अब तक शहरों में अनेक तबकों के लोग आपस में मिल कर रहते थें, वहां धीरे-धीरे मजदुर बस्तिया शहरकी बाकी आबादी से हट कर रहने लगी। इन बस्तियों में न तो सडकें ठीक होती, न ही नालियां न ही कूड़ा निकालने की कोई व्यवस्था, न ही पेय जल का इंतजाम, और न ही ठीक से बने हुए मकान। इतिहासकार होब्सबाम का कहना है कि यूरोप के शहरों में इस किस्म की बस्तियां ज्यादातर शहर के पूर्वी हिस्सों में बसीं। सो शहरों में एक नया भेद शुरू हो गया-ईस्ट एण्ड़ निवासी (गरीब) और वेस्ट एण्ड निवासी (अभिजात्य) का।

रह-रहकर औधोगिक शहरों में महामारियां भी बढ़ने लगीं। ग्लासगों में पहली बार 1818 में हाइफस जवर का प्रकोप फैला। यूरोप के सारे औधोगिक शहरों में 1831 और 1832 में टाइफाइड की महामारी छाई रही। इन शहरों में कालेरा, मियादी बुखार, और तपेदिक का भी बोलबाला रहा। ये सारी बीमारियां ज्यादातर मजदूर बस्तियों में ही रहीं मानों यह साबित कर रही हों कि जहां दरिद्रता और गंदगी है वहां बीमारियां भी रहेंगी। इस सबने मजदूर बस्तियों के निवासियों का हौसला तोड़ दिया। सामाजिक हौसलापस्ती के कई लक्षण सामने आने लगे। शराब का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल होने लगा। बाल हत्या,वेश्यावृति, आत्महत्या, और मानसिक विक्षप्ता की घटनाएं बढने लगी। मजदूरों की दुर्गति इस बात से और भी ज्यादा उजागर हुई कि औधोगिक क्रांति के कारण समाज के बाकी सारे वर्गो की सम्पन्नता बढ़ रही थी।

9.5 बुराइयों को दूर करने के प्रयास एवम् समाधान

फैकट्री सिस्टम की इन बुराइयों को जल्द से जल्द दूर करना बड़ा जरूरी था क्योंकि एक तो साधारण मानवीयता का तकाजा था कि मजदूरों के काम करने के हालात में सुधार आए। इससे भी ज्यादा बडा कारण यह था कि फैकट्रीयों में अधिकांश उत्पाद फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूर ही खरीदते थे। इसलिए अगर मजदूरों की माली हालत एक सीमा से नीचे जाती तो नुक्सान पूँजीपतियों को ही होता और अगर मजदूर बस्तियों की समाज व्यवस्था को ठप्प होने दिया जाता तो डर था कि कहीं देश में विद्रोह न भड़क उठे। विद्रोह न भी होता तो यह तो साफ था कि मध्यवर्ग के जवान इन बस्तियों में फैल रही शराबखोरी, वैश्यावृत्ति और अन्य प्रकार की अनैतिकता के चक्कर में पड़ रहे थे। यदि मध्यवर्ग को अनैतिकता से बचाना था तो जरूरी था कि मजदूर वर्ग से अनैतिकता को दूर किया जाए।

9.5.1 संसदीय प्रयास

आजकल यह माना जाता है कि यदि फैक्ट्री मालिक अपने मजदूरों की भली प्रकार देखभाल करें तो उन्हे ही ज्यादा मुनाफा होता है। पर उन्नीसवीं सदीं में यह बात अधिकांश पूजीपतियों की समझ में नहीं आ रही थी। इसलिए हम पाते हैं कि फैक्ट्री में मजदूरों की स्थिति सुधारने वाले अधिकांश उपाय केवल कुछ फैक्ट्री मालिकों की पहल पर, राज्य व्यवस्था द्धारा, विभिन्न देशों की संसदों द्धारा किए गए। सबसे ज्यादा सुधार का काम इंगलैण्ड में हुआ।

ऐसे उपायों में से पहला था इंगलैण्ड में राबर्ट पील द्धारा संसद में पास किया गया हेल्थ एण्ड़ मारटज एक्ट (1802)। यह एक्ट केवल बड़ी फैक्ट्रीयों पर लागू होता था, और केवल एपरेन्टिसों पर। इस एक्ट में यह कहा गया कि नौ साल से कम उम्र के बच्चे बतौर एपरेन्टिस नही लगाए जा सकते। फैक्ट्री मालिकों पर इन बच्चों से बारह घण्टे से ज्यादा या फिर रात में काम करवाने पर रोक लगा दी गई।

1802 के एक्ट में कई खामियां थी। एक तो यह केवल बड़ी फैक्ट्रीयों पर लागू होता था और वहां भी केवल उन फैक्ट्रियों पर जो कि एपरेंटिसों को इस्तेमाल करती थी। बेहुनर बाल मजदूरों को इस एकट से कोई सुरक्षा नही मिलती थी। सबसे मुख्य बात तो यह थी कि इस एक्ट में निरीक्षण करने का कोई प्रावाधान न था। नतीजतन यह एक्ट महज कागजी कानून बन कर रह गया।

फिर 1816 में पील की चेयरमेनी में एक संसदीय कमेटी का गठन किया गया। इस कमेटी की सलाह पर 1819 का फैक्ट्री नियंत्रण कानून पास किया गया। इस कानून में पिछले कानून के प्रावधानों को दोहराया गया और कहा गया कि सारे बाल मजदूरों को इस कानून की सुरक्षा दी जाएगी। साथ ही यह निर्धारित किया गया कि सोलह साल से कम उम्र के मजदूरों को बारह घण्टे के दिन में डेढ़ घण्टे की खाने की छुट्टी दी जायेगी। चुंकि यह एक्ट सारे कामकाजी बच्चों पर लागू होता था इसलिए लोगों ने इसका डट कर विरोध किया। विरोधियों में एक बड़ा तबका उन मां-बांप का था जो अपने बच्चो से काम करवाते थे।

9.5.2 समाज सुधार और अबंधनीति

तुमने अबंधनीति के बारे में पढ़ा होगा । यह नीति अट्ठारवीं सदी के अंतिम दशकों में काफी फैल चुकी थी। अर्थशास्त्री एड़म स्मिथ, जिसका हम पहले जिक्र कर चुके हैं, इसका एक बड़ा समर्थक था इस नीति के मतावलंबियों का मानना था कि समाज की अर्थव्यवस्था तब ही सफल हो सकती है जबकि सरकार अर्थव्यवस्था को अपने आप पर छोड दें, उसमें अपनी टांग न अडाए।

जब उन्नीसवीं सदी में संसदीय प्रयत्न मजदूरों के सुधार के लिए होने लगे तो सुधार विरोधी उधोगपतियों ने अबंधनीति की दुहाई देते हुए यह गुहार लगाई कि अगर राज्य फैक्ट्री सिस्टम को सुधारने, नियंत्रित करने की कोशिश करेगा तों सारी अर्थव्यवस्था ही ठप्प हो जाएगी। दरअसल बड़े-बड़े दार्शनिक विचारों की आड़ में ये विरोधी केवल इतना कह रहे थे कि उन्हें मजदूरों-बच्चे, महिलाएं, और पुरुष का खून चूसने से नहीं रोका जाना चाहिए भले ही ऐसा करते हुए वे समाज की इतनी दुर्गति क्यों न कर दें जिससे कि समाज का साधारण चाल-चलन ही ठप्प हो जाए। ऐसे विरोधियों को उनकी खुद की बेवकूफी से बचाना जरूरी था।

9.5.3 सुधारक यत्न जारी रहे

1820 के दशक में पावर लूम और भाप के इंजन में काफी ज्यादा यांत्रिक सुधार आए। इसका नतीजा यह हुआ कि इस दशक में धीरे-धीरे फैक्ट्री सिस्टम सारे कपड़ा उधोग, और खनिज उत्पादन पर छा गया। फैक्ट्रियां भी केवल कुछ शहरी इलाकों में केंन्द्रित होने लगी। लंकाशायर का कपड़ा उधोग इसका अच्छा उदाहरण है। यहां कोई 25 वर्ग मील के क्षेत्र में इतनी ज्यादा कपड़ा मिलें थीं कि इंग्लैण्ड़ का 80 प्रतिशत से ज्यादा कपड़ा बनाया जाता था। जितना फैक्ट्रियों का जमाव बढ़ा, उतना ही उनके दुर्गुण प्रकट हुए। इसमें सुधार लाने के संसदीय प्रयास भी उतने ही जोरों से किए जाने लगे।

9.5.4 सैड़लर के प्रयास

माइकेल सैड़लर ने 1831 में टेन-आवर बिल इंग्लैण्ड़ की संसद में पेश किया। इस बिल में यह प्रावधान था कि किसी भी मजदूर से दस घंटे (टेन-आवर) से ज्यादा काम नहीं लिया जा सकेगा। यह बिल संसद में पास नहीं हो सका।

पर इन दिनों इंग्लैण्ड़ में वेस्ट इण्ड़ीज की दास प्रथा को लेकर काफी गहमा-गहमी चल रही थी। इसके रहते अखबारों और पत्रिकाओं में फैक्ट्री मजदूर की तुलना वेस्ट-इण्ड़ीज के नीग्रो दासों से की जाने लगी। धीरे-धीरे यह मत फैलने लगा कि मजदूरों की स्थिति में सुधार के लिए कुछ ठोस कदम उठाए जाने चाहिए। इसके फलस्वरूप जब 1833 में लार्ड़ एशले ने संसद में अपना प्रस्ताव रखा तो वह कुछ संसदीय छीना-झपटी के बाद पारित हो गया।

9.5.5 एशले का कानून

लार्ड़ एशले के कानून (1833) को सारी कपड़ा बुनने की फैक्ट्रियों पर लागू किया गया। इसके अनुसार नौ साल से कम उम्र के बच्चों को फैक्ट्री में काम करवाने पर पाबंदी लगा दी गई। तेरह साल से कम उम्र के मजदूरों से दिन में नौ घंटे और सप्ताह में 40 घंटे से ज्यादा काम करवाना प्रतिबंधित किया गया। उन्हें रोज़ डेढ़ घंटे की खाने की छुट्टी देना जरूरी रखा गया। यह कहा गया कि अट्ठारह साल से कम उम्र के मजदूरों से दिन में 12 घंटे और सप्ताह में 69 घंटे से ज्यादा काम नहीं करवाया जा सकता। "रात" के काम को ठीक तरह से परिभाषित किया गया। साढ़ें आठ बजे शाम से लेकर साढ़े पांच बजे सुबह तक के समय को "रात" करार दिया गया और इस पारी में केवल अट्ठारह साल से ज्यादा उम्र के मजदूरों के प्रयोग की अनुमति दी गई। फैक्ट्री में काम करने वाले हर बच्चे का रोज दो घंटे स्कूल जाना निश्चित किया गया। निरीक्षकों की एक बड़ी टोली नियुक्त की गई जो फैक्ट्री मालिकों पर निगरानी रख सके। और जो मालिक कानून की अवहेलना करते हुए पकड़े जाएं, उन के सिर बड़ी सजा का प्रावधान रखा गया।

इस कानून में दो मुख्य खामियां थी। एक तो यह केवल कपड़ा उधोग पर ही लागू किया गया जबकि अन्य उधोगों में भी मजदूरों की हालत काफी खराब थी। दूसरे, यह केवल बच्चों को अपने दायरे में लेता था जबकि स्त्रियों और पुरुषों को भी कानूनी सुरक्षा की आवश्यकता थी।

9.6 समाज और सामाजिक परिवर्तन

बहरहाल इस कानून से कुछ बातें साफ जाहिर होती थीं। सबसे पहली बात तो यह कि हालांकि समाज में अब भी अबंधनीति का बोलबाला था, अब सरकार की समझ में यह आने लगा कि कि समाज के कुछ अंश ऐसे होते हैं जहां कि सुधार लाने के लिए सरकारी हस्तक्षेप जरूरी होता है। दूसरी बात यह कि अब साधारण तौर पर यह माना जाने लगा कि समाज मे औद्योगिक उत्पादन की इकाई परिवार नहीं बल्कि व्यक्ति विशेष था और उसकी सामाजिक सुरक्षा और सिखा-पढ़ी की जिम्मेदारी केवल परिवार पर ही नहीं छोड़ी जा सकती थी, समाज को भी आगे बढ़कर कुछ उपाय करना जरूरी था।

धीरे-धीरे अन्य उधोगों को भी फैक्ट्री कानून के तहत लाया गया। 1842 में लाई एशले के कानून को कोयला खदानों पर लागू किया गया और महिला मजदूरों को भी सुरक्षा दी जाने लगी। 1878 में इस कूनन ने सारी फैक्ट्रीयों और वर्कशापों को अपने दायरे मे ले लिया। इस बीच दूसरे देशों में भी फैक्ट्री कानूनों की प्रक्रिया जारी थी। 1841 में फ्रांस में बाल-मजदूर कानून लागू किया गया। एशिया में भी 1870 तक कई कानून जारी किए गए, पर उन्हें कभी गंभीरता से लागू नहीं किया गया।

1848 में सारे यूरोप में सोशलिस्ट विद्रोह हुए और उन्हेंह काफी आसानी से कुचल दिया गया। इन विद्रोहों में मजदूरों ने बढ़ कर हिस्सा लिया था। कुचले जाने के बाद इन विद्रोहों के बहुत सारे नेता मजदूर नेता बन गए और फैक्ट्री मालिकों से मजदूरों की भलाई के लिए मांग करने लगे। इस समय के बाद से फैक्ट्री मजदूरों के संगठन बनना शुरू हो गए और कर्मशाला के हालातों में सुधार के लिए ये संगठन अपने अपने उधोगों और सरकारों पर जोर डालने लगे। ऐसा इन्होंने किस तरह किया तुम अन्य इकाइयों में पढ़ोगे।

9.7 सारांश

इस इकाई में तुमने जाना कि फैक्ट्री सिस्टम अट्ठारहवीं सदी में शुरू हुआ। इसने औद्योगिक उत्पादन में एक नए कर्म विन्यास को जन्म दिया। फैक्ट्रियां चलाने के लिए एक नए किस्म के अनुशासन की जरूरत थी जो कि पहले कभी संसार में देखने को नहीं मिला था। लगातार अनुशासन स्थापित रखने के लिए फैक्ट्री कर्मियों के उपर एक नए मैनेजमेंट तबके का जन्म हुआ- फोरमैन और सुपरवाईजर। ये लोग लेबर अरिस्टोक्रेट्स (Labour aristocrates) कहलाए। इनके रहते उधोगों में उधोग की मिलकियत और उसके मैनेजमैंट में भेद किया जाने लगा। मजदूरों के शहरों में रहने से कई बुराइयां पनपीं। उन्हें दूर करने के लिए उन्नीसवीं सदी के मध्य तक अभिजात्य वर्गों से कुछ समाज सुधारक उबर कर सामने आए। पर मजदूरों के संगठन अभी ठीक तरह से नहीं पनप पाए थे। वे 1848 के यूरोपीय विद्रोहों के बाद उबरे।

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) अंशों पर छोटे सवाल

कुछ शब्दों में जवाब दीजिए:

(क) क्या फैक्ट्री सिस्टम और औद्योगिक क्रांति में से कोई एक बगैर दूसरे के पनप

सकता था ?

(ख) फैक्ट्री सिस्टम की प्रमुख विशिष्टता क्या थी ?

(ग) क्या पिन बनाने की फैक्ट्री वास्तव में एड़म स्मिथ के वर्णन के अनुसार होती हैं?

(घ) क्या फैक्ट्री सिस्टम अनैतिक था ?

(च) अबंधनीति फैक्ट्री मालिकों को क्यों पसंद थी ?

(छ) इस इकाई में जिन फैक्ट्री सुधारकों का जिक्र हैं, उसके अलावा दो और सुधारको के नाम बताइये।

(11) सारी इकाई पर सवाल

दो सौ से तीन सौ शब्दों में जवाब दें:

(क) फैक्ट्री सिस्टम इंग्लैण्ड़ में किस तरह पनपा ?

(ख) फैक्ट्री सिस्टम ने किस तरह स्थापित आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं पर प्रहार किया ?

(ग) फैक्ट्री सिस्टम के कारण समाज में किस तरह के परिवर्तन आए।

(घ) फैक्ट्री सिस्टम में सुधार लाने के प्रयत्नों की विवेचना करें।

9.9 प्रासंगिक पठनीय ग्रन्थ

ई.जे. होब्सबाम — फ्राम इंड़स्ट्री टू एम्पायर, पेन्गुइन

ई.जे. होब्सबाम - एज आफ रेवोल्यूशन, पेन्गुइन

ई.पी. टामप्सन - मेकिंग आफ द इंगलिश वर्किंग क्लास

(सभी किताबें अंग्रेजी में हैं बाज़ार में आसानी से मिल जाती हैं)

Notes